संकल्प-सिद्धि

लेखक
स्वामी ज्ञानाश्रमजी

प्रकाशक
डा० दुर्गाशंकर नागर,
कल्पवृक्ष-कार्यालय, उज्जैन सी आई

प्रथमबार } संवत् १९९२ वि० { मूल्य ॥=)

प्रकाशक
डॉक्टर दुर्गाशंकरजी नागर,
'कल्पवृक्ष' - कार्यालय,
उज्जैन, सी० आई०



मुद्रक
श्री प्रवासीलाल वर्मा मालवीय
सरस्वती-प्रेस, बनारस केंट



स्वामी ज्ञानाश्रमजी महाराज

स्वामी ज्ञानाश्रमजी महाराज का संक्षिप्त परिचय

स्वामीजी महाराज मु० घड़वा, पोस्ट घनश्यामपुर (यू० पी०) नामक एकांत स्थान में २० वर्ष से निवास करते हैं। यह स्थान गंगातट के ऊँचे टीले पर है, और बड़ा रमणीक है। यहाँ पर ११२ कोठरियाँ व बाकी छप्पर के झोंपड़े बने हुए हैं। जो कोई आता है, इस स्थान की रमणीकता व विशुद्धता देखकर मुग्ध हो जाता है, और उसको इस स्थान पर रहने की स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हो जाती है। श्रीमान् पूज्य स्वामीजी महान् उपकारी व अत्यन्त दयालु हैं। सदा एक-दो संत-महात्मा व विद्यार्थी स्वामीजी के पास बने रहते हैं। बीमारों को निःस्वार्थ-भाव से २० वर्ष से औषधि का वितरण करते रहते हैं, और आपके द्वारा आस पास की ग्रामीण जनता को अत्यन्त लाभ पहुँच रहा है। परमार्थिक विषय में भी यथाधिकार जिज्ञासुओं को सहायता दी जाती है, किसी से किंचित् मात्र लेने की अपेक्षा न कर केवल अयाचित वृत्ति से निर्वाह करते हैं। कल्पवृक्ष-कार्यालय से भी आपका १० वर्ष से सबंध है, और आध्यात्मिक उपचार से भी आप जनता को लाभ पहुँचाते रहते हैं। कई सज्जन सत्संग के लिए स्वामीजी महाराज के पास दूर दूर से आया करते हैं। स्वामीजी का जीवन बड़ा ही निर्मल, पवित्र तथा उच्चकोटि का है। आप अपना अधिकांश समय ब्रह्म चिन्तन में ही लगाये रहते हैं।

—दुर्गाशंकर नागर।

प्रस्तावना



वर्तमान हिंदी-संसार में पूर्वकालीन ऋषि-मुनियों के संपादित अति सूक्ष्म मानसिक विषयों को सूक्ष्मदर्शी एवं कुशाग्र और तीव्र बुद्धि पाश्चात्य विद्वानों ने पुनः आविष्कृत कर जन समुदाय का बड़ा भारी उपकार किया है, और श्री पंडित दुर्गाशंकरजी नागर (डाक्टर) महोदय ने उन्हीं का 'कल्पवृक्ष' मासिक-पत्र द्वारा सरल हिन्दी भाषा में लोकोपकारार्थ प्रसार कर जनता का महान् उपकार किया है। विगत १२ वर्ष से 'कल्पवृक्ष' नामक मासिक-पत्र को पढ़ते रहने से मुझे जो असीम लाभ हुआ, उसे लेखनी पूरा लिखने में असमर्थ है।

किन्तु उस अलभ्य लाभ की प्राप्ति से यह इच्छा हुई कि जैसा लाभ मुझे हुआ, उसी प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के न्यायानुसार सर्व बंधुजनों को भी लाभ पहुँचे, इसी विचार से अनेक मासिक-पत्रों से केवल विचार-विषयक लेखों के सार-मात्र लेकर अंग्रेजी और उर्दू भाषा के कठिन लेखों (शब्दों) को सरल हिन्दी भाषा में जन-साधारण के समक्ष में आ सकने योग्य रीति से संग्रह किया है। इतने पर भी यदि बुद्धि-दोष या दृष्टि दोष से कहीं त्रुटि रह गई हो, तो विद्वज्जन सरल हृदय से उसे सुधारने की कृपा करेंगे।

इस छोटे से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने के भय से यद्यपि सब विद्वानों के नाम लिखने का विशेष प्रयोजन नहीं समझा, तथापि सर्वसाधारण असमर्थजनों के लिए यह ग्रन्थ अल्प मूल्य होने के कारण महान् उपकारक हो सकेगा। इसी विचार से जहाँ-जहाँ अत्युपयोगी समझा, वहाँ उन विद्वानों के शुभनाम भी प्रदर्शित किये गये हैं, और प्रसंगानुरूप

यत्र-तत्र अपना अनुभव भी प्रदर्शित किया है। जिन महात्मा एवं विद्वानों के लेखों से इस ग्रंथ में सहायता मिली है, उन सब महानुभावों का मैं कृतज्ञ हूँ। इसी प्रकार डाक्टर दुर्गाशंकरजी नागर ने जो उपकार 'कल्पवृक्ष' मासिक-पत्र के द्वारा किया है उसके लिए भी मैं हृदय से आभारी हूँ और सदैव ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे सज्जन परोपकारी महापुरुष को चिरजीवन प्राप्त हो, जिससे सदैव जनता का इसी प्रकार उपकार होता रहे।

इस छोटे से ग्रंथ से यदि सर्वसाधारण जनों को लाभ होगा और ऐहिक-पारलौकिक कार्य में सुधार की सहायता मिलेगी, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

मु० बरुआ
पो० घनश्यामपुर
जिला कानपुर

स्वामी ज्ञानाश्रम

संकल्प-सिद्धि

विचार क्या है ?

विचार पर विचार करते समय प्रथमतः यही प्रश्न उत्पन्न होता है कि विचार क्या है ? कहाँ से उत्पन्न होता है तथा विचारों का क्या प्रभाव पड़ता है ? विचारों में कितनी शक्ति है, विचार का क्या स्वरूप है, क्या रंग है, विचारों के बदलने का क्या उपाय है, और उससे क्या लाभ होता है ? कहना न होगा कि विचारों का विशेष रूप होता है और रंग भी। इसी प्रकार उनमें जीवन-शक्ति होती है। यद्यपि विचार-तत्त्व अदृश्य है और चर्मचक्षुओं द्वारा वह देखा नहीं जाता तथापि विचारों की उत्पत्ति परमाणुमयी है और विचार के परमाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनसे सूक्ष्म और वेगवान् अन्य वस्तु संसार में कोई नहीं है। जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है, उसका बल भी उतना ही अधिक होता है, किन्तु विचारों का सबसे सूक्ष्म होने के कारण बिजली आदि सब वस्तुओं से भी उनका बल बहुत अधिक माना गया है।

जड़ वस्तु से चेतन और सूक्ष्म वस्तु में सदैव ही अधिक [illegible]ता है। जैसे पत्थर से मिट्टी सूक्ष्म है और उसमें पत्थर [illegible] अधिक होता है। क्योंकि पत्थर की जड़ता से मिट्टी

में जड़ता कम है, इससे पत्थर की अपेक्षा मिट्टी में जीवन-शक्ति अधिक है। मिट्टी से पानी सूक्ष्म है, पतला है, अतः इससे वह अधिक उपयोगी और बलवान् है। पानी से भाप सूक्ष्म है और भाप से वायु सूक्ष्म है, बलवान् है। वायु से शतगुण वाला आकाश अधिक सूक्ष्म एवं बलवान् है। शब्द की गति से प्रकाश का बल अधिक है। प्रकाश से बिजली का बल अधिक और सूक्ष्म है। पर बिजली से भी विचारों का बल अति अधिक एवं सूक्ष्म होता है। यद्यपि विचार से भी सूक्ष्मतर वस्तुएँ जगत् में हैं, परंतु उनका ज्ञान हम लोगों को नहीं हुआ है, इससे जगत् की सर्व वस्तुओं से विचार और बुद्धि के अति सूक्ष्म एवं बलवान् होने का वर्णन वेद में किया गया है।

इन्द्रियेभ्य परमनो मनस सत्वमुत्तमम्
सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्
अव्यक्तस्तु पर पुरुषो व्यापकोऽलिंगएवच

इन्द्रियों से मन परे है, मन से बुद्धि परे है, बुद्धि से महत्तत्व परे है और महत्तत्व से अव्यक्त नाम प्रकृति परे है, प्रकृति से पुरुष परे है, ऐसे एक-से-एक अधिक सूक्ष्म और बलवान् हैं।

अमेरिका के एक विद्वान् ने लिखा है, कि प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में १८६००० मील की है और विचार की गति का प्रभाव ४००० से ८ मील तक जा सकता है। विचार-शक्ति की लहरों को दिन में सूर्य की किरणें खण्ड-खण्ड कर देती हैं, जिससे उसकी गति का कुछ अवरोध हो जाता है। रात्रि के समय या अन्धकार में विचार-शक्ति का वेग तीव्र हो जाता है और उस विचार-शक्ति के वेग को कोई रोक भी नहीं सकता।

अमेरिका जर्मनी आदि देशों में इस विद्या की दिनों-दिन उन्नति हो रही है और इसकी सहायता से बड़े-बड़े डॉक्टर अनेक कठिन रोगों को आराम भी कर रहे हैं। बडे हर्ष की बात है, कि हमारे ऋषि-मुनियों की विद्या का उत्थान पश्चिमी लोगों में बड़ी तीव्रता से हो रहा है। अत: अब भी भारतवासियों को इस घोर निद्रा से जाग कर अपने पूर्वजों की सम्पादित विद्या को पुन: विकसित करना चाहिए, जिससे भारतवर्ष की पुन: पूर्ववत् उन्नति हो सके।

विचार बिजली से भी अधिक वेगवाले हैं। जैसे बिजली १ सेकेण्ड में ७ बार पृथ्वी के आस-पास घूम सकती है, परन्तु विचारों की गति उससे भी तीव्र है, क्योंकि विचारों के परमाणु बिजली से भी अति सूक्ष्म और बलवान् होते हैं। बिजली आदि तत्वों से विचार की शक्ति अधिक चैतन्य तथा विशेष गति वाली है, इसलिए विचारों को अपने पास खींचने तथा दूर भेजने में अधिक श्रम नहीं पड़ता। विचार क्या वस्तु है, इसको समझने के लिए कम्पन की प्रक्रिया को समझना चाहिए। प्रत्येक वस्तु की तीन अवस्थाएँ होती हैं—दृढ, तरल, वाष्पमय। दृढ वस्तु में कम्पन की गति मन्द तथा तरल और वाष्पमय में तीव्र होती है और तीव्रतर गति से कम्पन होता है। इसी को सृष्टि क्रम कहते हैं।

कम्पनों के साधारण प्रभाव से शब्द उत्पन्न होता है। उन्हीं कम्पनों का तीव्र प्रभाव रगों का रूप धारण करता है और कम्पनों के भेद से वही रंग प्रकाश में पलट जाता है। इन तीन अवस्थाओं के सिवाय और भी अनेक स्थूल और सूक्ष्म अव-

स्थाएँ हैं, जिनको देखने की शक्ति हमारी स्थूल इन्द्रियों में नहीं है ; परन्तु विज्ञान ने उनका पता लगाना आरम्भ किया है ।

जब हमारे विचार बाहर की ओर जाते हैं, तब वे खाली हवा में वह नहीं जाते , किन्तु वे हमारी दशा को स्थिर और परिवर्त्तित करने तथा धनवान् वा दरिद्री बनाने में, हमारे कार्यों को सिद्ध वा नाश करने में मुख्य कारण होते हैं । यदि हम अपने विचारों को उचित मार्ग पर चलाना जान लें और चला सकें, तो समस्त दुःखों से छूटकर हम परमानन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं ।

प्रत्येक विचार जो हमारे मन में आता है, वह एक तीर के सदृश होता है । उसमें जितनी शक्ति और तीव्रता होगी, उसी के अनुसार दूसरों के हृदय में जाकर वह असर करेगा और लौट कर हम पर अपना भला-बुरा प्रभाव डालेगा। अपने मन में उत्तम विचारों को स्थान दो , क्योंकि ये विचार शीघ्र ही तुम्हारे बाह्य जीवन की उत्तम अवस्था के रूप में प्रकट होंगे ।

अपनी आत्मिक शक्तियों को अपने वश में रखो। ऐसा करने से तुम अपने बाह्य जीवन को जैसा चाहो वैसा बना सकोगे। मुक्तिप्राप्त और पापी में यही अतर है कि एक अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है और दूसरा इद्रियों को वश में होता है । जो अपने मन को उपयोगी और बलवान् बनाना और प्रसन्न चित्त रखना चाहता है वह अनिष्ट, घृणित और अपवित्र विचारों को कभी मन में न आने दे । यदि तुम क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, वा अन्य किसी वासना के अधीन रहते हुए उत्तम स्वास्थ्य की इच्छा करते हो, तो यह असमव है । ऐसा कदापि नहीं

हो सकता कि तुम नीच विचार करो और तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहे।

योगियों का सिद्धांत है कि विचार भी परम बलवती एक शक्ति है और विचारों द्वारा जो चाहो सो हो सकता है। विचार और भाव शरीर के सब अंगों को बना कर पुष्ट रख सकते हैं। इसी आशय को डा० एण्डरसन ने विज्ञान-द्वारा सिद्ध किया है—एक बार उन्होंने ११ मनुष्योंको एकत्रित करके उनकी दाहिनी भुजा और बाईं भुजा का प्रीप मशीन से पता लगाया तो पहले जिस दाहिनी भुजा की शक्ति १११ पोंड, और बाईं भुजा की १७ पोंड थी, वही एक सप्ताह विचार-पूर्वक अभ्यास करके परीक्षा करने पर दाहिनी ६ पौंड बढ गई, किन्तु बाईं भुजा की शक्ति कुछ भी काम न करने पर ७ पौंड घटी इससे उन्होंने यह सिद्ध किया कि शक्ति का विचार करो तो तुम शक्तिमान् हो जाओगे।

परमात्मा ने मनुष्य में विचार-बल नाम की एक अद्भुत वस्तु दी है। सैकड़ों मनुष्य इसी के बल द्वारा कठिन-से-कठिन कार्य्य कर चुके हैं। विचार की दृढता ही मनुष्य को ईश्वर बनाने में समर्थ हो सकती है, परन्तु वह विचार सच्चा और दृढ हो। जब विचारों का प्रभाव और महत्त्व इतना अधिक है, तो इन्हें बलवान् और दृढ बनाने की चेष्टा भी अवश्य करनी चाहिए।

विचार एक के बाद दूसरा उसके बाद तीसरा—इस प्रकार उठा करते हैं। उनमें कई तो लय हो जाते हैं, किन्तु जो दृढ होते हैं, वे सफलता प्राप्त करने तक लय नहीं होते। इसी प्रकार कुछ दृढ़ विचार बुरे भी होते हैं। जैसे चोर जब चोरी करता है, तब वह कार्य भी उसके विचार का ही फल होता है। व्यभि-

चारी और घातकों के विचारो में भी दृढ़ता होती है, परन्तु उनकी विचार संज्ञा नहीं है।

स्वार्थहीन विचारों को सत्यमय या उत्तम विचार कहें, तो अनुचित न होगा। दृढ विचार वे कहाते हैं जो मन, वाणी और कर्म से युक्त हों, परन्तु वे सात्विक निःस्वार्थ तथा सत्यता से भी युक्त होने चाहिए। उन्हीं की शास्त्रों में विचार संज्ञा वर्णन की है। अन्य स्वार्थी तथा निंद्य तामसी विचारों की निंद्य विचार संज्ञा है, इससे उत्तम सात्विक विचार ही कल्याणकारी हैं।

बुरे विचारों का कारण मानसिक निर्बलता है, क्योंकि

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
परमब्रह्म को पाइये, मन ही के परतीत।'

इससे दृढ विचार के लिए मन का दृढ होना अत्यन्त आवश्यक है।

विचार कोई अदृश्य वस्तु नहीं है, वरन् एक वास्तविक तत्व है। जब हम अपने विचारों को कार्य में परिणत करते हैं, तब एक शक्ति को कार्य में लगाते हैं। विचार के बल का कोई निरोध नहीं कर सकता। विचार सब शास्त्रों में बड़ा है, जिसे परमात्मा ने मनुष्य के हाथ में दे रखा है तथापि हम बुरे विचारों के फन्दे में फँसने की पराधीनता को सदा गाया करते हैं, इससे सदा अच्छे विचारों को अपने मन में लाने का अभ्यास करना चाहिए। इससे बुरे विचार अपने आप नष्ट हो जायँगे, क्योंकि अच्छे विचार अविनाशी होते हैं।

बुरे विचार अन्धकार के समान और अच्छे विचार प्रकाश के समान हैं। प्रकाश को उपस्थित करो, तो अन्धकार स्वयं भाग जायगा। तुमने अपने शरीर पर अपने विचारों के प्रभाव का

कभी विचार नहीं किया। और अपने भले-बुरे विचारों को अपने मन में अबाध घुसने दिया है, इससे वे अपनी इच्छानुसार वहाँ प्रवेश करके फिर बाहर निकला करते हैं, और तुम्हारे मस्तिष्क पर भले या बुरे चिह्न छोड़ जाते हैं, परतु इस बात पर तुमने कभी किंचित् ध्यान तक नहीं दिया है।

अब यह बात अच्छी तरह निश्चय कर लो कि तुम्हारे विचार पदार्थरूप में परिणत हो जाते हैं और तुम्हारा बाह्यरूप तुम्हारे विचारों के तुल्य ही होता है।

एक यौगिक कहावत है—'जैसे ऊपर तैसे नीचे, जैसे भीतर तैसे बाहर।' तुम्हारा आन्तरिक रूप तुम्हारे विचार ही हैं और बाहरी रूप उन्हीं का प्रतिबिम्ब है। उचित विचारों से ही उचित अनुभव-शक्ति बढ़ती है। उस उचित अनुभव-शक्ति से समग्र निर्बलताओं को दूर कर सकते हो, और निर्बलकारी बाह्य प्रभावों की शक्ति से बाहर हो सकते हो, अप्रभावित हो सकते हो।

लकड़ी-पत्थर आदि फेंकने से ऐसा आघात नहीं पहुँचता जैसा कि विचारों के फेंकने से पहुँचता है। इसीलिए किसी को विचारों द्वारा आघात करना नीच कर्म है। अत जब किसी से विचार-विनिमय करो तब दया, आरोग्यता और आनद के विचार ही दो, क्योंकि मनुष्य जैसा विचार करता है, वह स्वय तत्काल वैसा बन जाता है, जैसे यदि किसी को मारने का विचार किया तो मारने की क्रिया पहले से अपने भीतर उत्पन्न होगी। यदि सुधारने का विचार किया, तो सुधारने की क्रिया पहले अपने मन में होगी और तत्क्षण हम वैसे ही बन भी जायँगे। इस विषय का आगे सविस्तर वर्णन किया जायगा।

सिद्धि के साथ-साथ काम भी बहुत होता है। यदि बीच में कोई अन्य विचार उठ पड़े तो उसे दृढता-पूर्वक मन से निकाल देना चाहिए।

सबसे उत्तम रीति यह है, कि उस विचार को भुला कर उसके स्थान में कोई अच्छा विचार किया जाय, इससे बुरा विचार स्वयं नष्ट हो जायगा, इसलिए हमेशा ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि तुम विचार के वश में न हो जाओ, वरन् विचार तुम्हारे वश में हो।

प्रिय मित्रो! अब तुम अपने मन से असन्तोष और निराशा के भावों को एक बार निकाल दो और मुख-मण्डल पर मुसकराहट के भावों को धारण करो। सदा प्रसन्नचित्त रहो। प्रेम और सहानुभूति का भाव अपने मन में धारण करो। सदैव सीधे चलने और सीधे बैठने का अभ्यास करो, जिससे तुम्हारी छाती बाहर की ओर निकली रहे और फेफड़े पूर्णतया वायु ले सकें। फिर तो ससार में ऐसा कोई न होगा, जो तुमको नीचा दिखा सके। इस बात को दृढता से धारण करो।

ससार में जितने महान् पुरुष हुए हैं, सबने इसी नियम का पालन किया है। सबसे बडी बात जो प्रत्येक व्यक्ति में होनी चाहिए, वह चरित्र-बल है। सच्चरित्र व्यक्ति के लिए कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं है।

इस भारतवर्ष में जो बड़े-बडे महात्मा-ऋषि मुनि हो गये हैं, उन सभी ने चरित्र बल से ही उच्चपद प्राप्त किया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए, जो भविष्य में कुछ उन्नत होना चाहता हो, यह सीखना अत्यावश्यक है, कि किसी एक निर्णीत कार्य में अपने सब विचारों को कैसे लगाया जाय। यह बात केवल विचार-द्वारा ही सिद्ध हो

सकती है और विचारों से ही सब अंग-प्रत्यंग एक सूत्र में बाँधे जा सकते हैं, परन्तु कोई भी बात सोचने मात्र से पूरी नहीं हो सकती, वरन् सोचने के साथ ही कार्य भी करना पड़ता है ; जैसे कोई वीणा के पास बैठ कर यह विचार करे, कि मैं इसको बजाने में कुशलता प्राप्त करूँ, तो केवल विचार से ही उसे कुशलता प्राप्त नहीं हो सकती, किन्तु विचार के साथ साथ उसे वीणा बजाने का अभ्यास भी करना होगा, जिससे उसका विचार कार्य-रूप में परिणत हो सके, इसलिए पहली बात विचार का उत्पन्न होना है और दूसरी उस विचार को कार्य-रूप में परिणत करना है।

विचार में एकाग्रता का होना आवश्यक है। इससे एकाग्रता पूर्वक जिस बात का विचार करोगे, उसमें तुमको सफलता अवश्य होगी। तुम्हारे मनमें जैसे विचार उत्पन्न होते हैं, वैसे ही कार्य में तुम प्रवृत्त होते हो। तुम्हारे सब कार्य विचारों पर निर्भर हैं। विचारों के परिणाम से तुम कदापि बच नहीं सकते।

संसार में ऐसा कोई काम नहीं है, जो एकाग्रता और शांति से करनेपर सरलता पूर्वक न हो सके, और ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो आत्मिक शक्ति का सावधानी और बुद्धिमानी से उपयोग में लाने पर प्राप्त न हो सके। इससे सदैव अपने मन में उत्तम विचार करो, तो वे विचार शीघ्र ही तुम्हारे बाह्य जीवन में उत्तम अवस्थाओं के रूप में प्रकट होंगे।

निश्चय रखो कि सदैव शुद्ध विचार करने ही से आत्म-शक्ति और सर्वज्ञता प्रकट होती है। तुमने अल्पज्ञ होने से प्राय. मलिन और अशुद्ध विचार ही किये हैं, इसलिए अब शुद्ध उत्तम विचार करने का ही अभ्यास करो।

कोई व्यक्ति भाग्य भाग्य चिल्लाता है, मानो वह उसके सामर्थ्य के बाहर है , किन्तु यथार्थ में मनुष्य अपने भाग्य का स्वय आप निर्माता अर्थात निर्माणकर्त्ता है , क्योंकि जैसे उसके विचार होंगे, वैसे ही उसके सब कार्य भी उन विचारों के अनुकूल ही होंगे। यदि मनुष्य विचार करना सीख ले, तो भाग्य उसको हाथ की कठपुतली बन जाय।

सुख के बिना अन्य विचारों को मनमें आने ही न दो , क्योंकि सदैव मन में जैसा सोचते रहोगे, वैसी ही दशा प्राप्त होगी। जिस वस्तु का सदा ध्यान रहता है, वही वस्तु अपनी ओर आकर्षित होती है। जो बहुत हीन दशामें पहुँच जाता है, उसकी दीनता का कारण उसके विचार ही होते हैं। मनमें उठते हुए विचार ही भविष्यत् के बीज हैं। दु:ख और दरिद्रता के विचार दु ख और दरिद्रता को बढ़ाते हैं और सुख सम्पत्ति के विचार सुख-सम्पत्ति को बढाते हैं। बिना सुख के विचार मनमें दृढ किये कोई सुखी नहीं हो सकता। मन खेत के समान है। इसमें सदैव कुछ न कुछ विचार उत्पन्न होता ही रहता है। जो कुछ विचार होता है, वह सुख वा दुःख को देनेवाला है। इस बात पर ध्यान रखोगे, तो तुम्हारा जीवन सुधर जायगा।

यदि तुम दुखी हो, दरिद्र हो, तो इसमें किसी का दोष नहीं , किन्तु दोष तुम्हारे भीतर का ही है। उसे ढूँढ निकालना तुम्हारा ही काम है। इससे सदा अपने मन को देखते रहो। तुम्हारे मन में अपवित्र और दु:खदायक विचार घुसने न पावें, इसी से तुम्हारी उन्नति होगी। अपनी अवस्था को देख कर स्वय आप ही आश्चर्य करने लगोगे।

लोग कहते हैं कि ईश्वर अपने भक्तों को दरिद्री बनाता है, यह बात ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर किसी को दरिद्री नहीं बनाता और न मूर्ख ही बनाता है, न धनवान्, न बलवान् और न विद्वान् ही बनाता है। ईश्वर तो परम दयालु है सबकी इच्छा पूर्ण करने वाला है। जो जैसी इच्छा करता है और जिसके मन में जैसे विचार उत्पन्न होते हैं, तदनुसार ईश्वर उसे फल देता है। जो जैसा विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है। इसलिए जैसा होने की इच्छा हो वैसा ही अपने को मानो। दो और दो मिलकर चार होना जितना सत्य है, उतना ही यह सिद्धान्त भी सत्य है, अनुभूत है। देखो और अनुभव करके देखो।

थोड़ा विचार करने से तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि पूर्ण परमात्मा अपूर्ण संसार की सृष्टि कैसे करेगा! सब विश्व और जीव दिव्य नियम के वशीभूत हैं। नियम के विरुद्ध कार्य करने से मनुष्य को परिणाम में कष्ट होता है। प्रत्येक भूल से जीव को कष्ट सहन करना पड़ता है। उसे नियम के उल्लंघन करने का दण्ड मिलता है, किन्तु वह अपने दु:ख का आप ही कारण है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य पूर्ण होने के लिए ही बनाया गया है, वह स्वयं अपनी भूल से कष्ट भोगता रहता है।

शरीर का नाश होने से विचारों का नाश नहीं होता। इसलिए मरने पर जब पुनः दूसरा जन्म होता है तब पूर्व जन्म में किये हुए अच्छे-बुरे विचार ही उसे दु:ख देते हैं।

जो विचार बारम्बार पुष्टता से किया हो उसे यदि कार्य पूर्ति के लिए समय न मिला तो बाद में जब उसे समय मिलेगा, तब वह (विचार) पुनः मन में उत्पन्न होकर अपनी इच्छा-

नुसार काम करा लेगा। जिस काम के न करने की इच्छा हो, उसे भी लाचार होकर करना पड़ता है। जैसे किसी ने बहुत दिनों तक चोरी के विचार किये हैं, परन्तु उसे चोरी करने का अवसर नहीं मिला और पीछे से किसी सत्सग में जाकर वह अपनी चाल-चलन सुधारने के लिए बहुत सावधानी रखने लगा और पूर्व किये हुए चोरी के विचारों का स्मरण अन्त' पश्चात्ताप होकर वह यह निश्चय भी करे कि अब कभी मैं चोरी न करूँगा, तथापि समय पाकर पूर्व में किये हुए चोरी के विचारों से चोरी करने को उसका मन ललचाता है और इच्छा न होने एव चोरी न करने का पूर्ण निश्चय करने पर भी उससे चोरी हो ही जाती है। क्योंकि उसके वे चोरी के विचार मरे नहीं, इसलिए जब उनको सहायक विचार मिलते हैं तब वे बलात्कार से चोरी करा देते हैं। इसी प्रकार पूर्व में किये हुए विचारों से अन्य-जन्म में भी लाचार होकर मनुष्य वही काम करता है। इतना बड़ा बल विचारों में है, क्योंकि शरीर के नष्ट होने से ही विचार नष्ट नहीं हो जाते हैं।

विचारों को विकसित करने का उपाय यह है कि जैसे एक ही मार्ग पर लगातार गाड़ियाँ दौड़ा करें, तो मार्ग में गाड़ी के पहियों के चिह्न बन जाते हैं और कुएँ पर रस्सी की रगड़ से पत्थर पर चिह्न बन जाते हैं उसी प्रकार एक ही विचार बारबार पुष्टता से किया हो तो मस्तिष्क में उस प्रकार के परमाणु पुष्ट हो जाते हैं और ज्ञान-तन्तुओं को उस विचार के अनुकूल चलने का स्वभाव पड़ जाता है। इससे मन और शरीर के परिश्रम विना सब कार्य आप ही-आप हुआ करते हैं। जब एक बार एक प्रकार के विचार

पर एकाग्रता करना आ जाता है, तब उसका वह विचार पुष्ट हो जाता है। उससे फिर अन्य विचार करना सहज हो जाता है। जैसे नित्य कसरत करने से शरीर पुष्ट होता है, वैसे ही नित्य नये विचार करने से विचार-शक्ति पुष्ट होती है। इस विचार-शक्ति को पुष्ट करना हो तो एक ही प्रकार के विचार पुष्टता से बारबार करना चाहिए। इसी प्रकार बुरे विचारों का नाश करना आ जाय तो हम बहुत ही सरलता और शीघ्रता से उन्नति कर सकते हैं, क्योंकि बुरे विचार ही हमें छोटी-छोटी बातों में फँसाये रहते हैं और इसी से हम आगे बढ़ने नहीं पाते। जैसे दुर्गन्धित स्थान को शुद्ध करने के लिए सुगंधित वस्तु छिड़कनी चाहिए और शीत-निवृत्ति के लिए उष्ण औषधि सेवन करनी चाहिए, वैसे ही बुरे विचारों को नष्ट करने के लिए अच्छे विचार पुष्टता से करना चाहिए, जैसे क्रोध के विचारों के नाश के लिए शांत विचार एकाग्रता से करना चाहिए और लोभ के विचारों के निवृत्यर्थ संतोष और उदारता के विचार अधिकता से करना चाहिए। द्वेष के विचारों के नाश के लिए प्रेम के विचार और अभिमान के विचारों के नाश के लिए नम्रता के विचार तथा भय के विचारों के नाश के लिए निर्भयता के विचार करना ऐसे ही औरों को तत्तत् विरोधी विचारों को बढ़ाना चाहिए। जैसे किसान अपने खेत में बोई हुई खेती को जब सुखाना चाहता है, तब उसे पानी से सींचना बंद कर देता है। इससे उस फसल का बढ़ना अपने आप बंद हो जाता है और खेती सूख जाती है, वैसे ही अपने मन में जमे हुए बुरे विचारों को नष्ट करना हो, तो उन्हें सींचना बन्द कर दिया जाय, अर्थात्—उस प्रकार के विचारों को फिर मन में न

आने दिया जाय। और यदि आ जायँ तो उन्हें तत्काल निकाल देना चाहिए। जैसे पानी के बिना वृक्ष थोड़े ही काल में सूख जाता है, वैसे ही बुरे विचारों को अन्य बुरे विचारों की सहायता न मिलने से थोड़े ही काल में वे स्वय नष्ट हो जायँगे। इससे बुरे विचारों को उठने ही न देना तथा उनके विरुद्ध अच्छे विचारों को मन में स्थान देने से अति शीघ्र बुरे विचार नष्ट हो जायँगे। मनुष्य बुरे विचार अधिक करता है और अच्छे विचार बहुत कम करता है, इसी से संताप भय, रोग, निराशादि अनेक व्याधियाँ देख पड़ती हैं, क्योंकि ये सब दुःख बुरे विचारों से ही उत्पन्न होते हैं। अच्छा विचार करने में जितना श्रम पड़ता है, उतना ही श्रम बुरा विचार करने में भी पड़ता है, किन्तु केवल अभ्यास की ही न्यूनता रहती है।

अच्छे विचार करना अति सरल कार्य है, तथापि हम अच्छे विचार नहीं करते। इसका कारण यह है कि हमें बुरे विचार करने की जो आदत पड़ गई है, वही अच्छे विचार करने में बाधा डालती है। जैसे जिस खेत में निकम्मी घास जमी है, उसमें अच्छे आम आदि के वृक्ष जोर नहीं कर सकते इसलिए चतुर माली उस निकम्मी घास को जड़ को खोदकर निकाल देता है। वैसे ही हमारे मन-रूपी खेत में बुरे विचार-रूपी घास गहरी जड़ पकड़ गई है, इससे हम सहज में अच्छे विचार नहीं कर सकते, इसलिए बुरे विचारों की जड़ को उखाड़ कर आम आदि उत्तम वृक्षों को जमाना चाहिए। क्योंकि बड़े वृक्षों की जड़ बहुत गहरी होती है और जंगली घास की जड़ ऊपर ही रहती है। बुरे विचार जंगल घास के समान हैं और उत्तम विचार आम-आदि के समान।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि पाप लकड़ी के समान हैं और ज्ञान अग्नि के समान है। यदि लकड़ी अधिक हो और अग्नि थोड़ी हो तो भी वह धीरे धीरे सब लकड़ियों को भस्म कर देती है, वैसे ही थोड़े से उत्तम विचार हों तो भी वे बहुत दिनों के बुरे विचारों का नाश कर देते हैं, ऐसी उत्तम विचारों की महिमा शास्त्रवेत्ताओं ने वर्णन की है। इससे बुरे विचार अधिक हों और अच्छे विचार न्यून हों तो भी उत्तम विचारों का बल बढ़ जाता है और उत्तम विचार हजारों बुरे विचारों का नाश कर देते हैं। इसी से पचाक्षरी, षटाक्षरी, अष्टाक्षरी, द्वादशाक्षरी, आदि मन्त्रोच्चारण से ही मनुष्य बड़े पापों से तर गये हैं। ऐसे ही यदि मनुष्यने जीवन भर दुष्ट विचार किये हों, परन्तु जब श्रद्धापूर्वक वह अच्छे विचार करे तो थोड़े ही काल में उसका कल्याण हो सकता है। इससे कदापि निराश नहीं हो जाना चाहिए कि आजन्म बुरे विचार किये तो अब थोड़े से अच्छे विचारों से क्या होगा ? बुरे विचारों से अच्छे विचारों में बड़ा बल होता है। उत्तम विचारों को मन, वचन, कर्म से तन्मय होकर और अतिशय प्रेम से करना चाहिए। उस समय अन्य बुरे विचारोंको किंचित्‌मात्र भी न आने देना चाहिए परन्तु आजकल प्राय सर्वजन किस प्रकार विचार करते हैं, इसे भी जान लेना आवश्यक है। इस विषय में कुशल विद्वान् लोग कहते हैं कि एक ओर तो वे धन प्राप्ति की इच्छा करते हैं और दूसरी ओर यह मानते हैं कि धन-प्राप्ति तो प्रारब्ध के अधीन है। इससे धन-प्राप्ति की इच्छा होने पर भी वे धन प्राप्ति के अधिक विचार नहीं करते, उलटे गरीबी के विचार ही अधिक करते हैं, अर्थात्—धन जाता रहेगा, नौकरी छूट

जायगी या व्यापार न चलेगा, तो हम क्या करेंगे, ऐसी नाना चिन्ताओं में पड़े रहने से गरीबी और चिंता के विचार बढ़ जाते हैं और धन-प्राप्ति के विचार दब जाते हैं। प्रकृति का नियम है कि गरीबी के विचारों से मनको दरिद्री रखकर कोई धनी नहीं हो सकता, किन्तु आश्चर्य है कि हमें धनी बनना है और उस पर भी हम गरीबी के विचारों में डूबे रहते हैं। जैसे अमुक मनुष्य का धन चला गया, इससे वह बहुत दुखी है। वैसे ही यदि हमारा धन चला जायगा तो हमारा क्या हाल होगा? अमुक मनुष्य बड़ा धनी था, परन्तु व्यापार में घाटा आने से वह दो कौड़ी का हो गया है। अमुक बड़ा ओहदेदार था, नौकरी छूट जाने से उसे कोई पहचानता भी नहीं, वैसा ही हमारा हाल हो जायगा तो हम क्या करेंगे? लड़कों के ब्याह करने हैं, उसमें जाति के अनुसार खर्च करने के लिए कर्जा लेना होगा। घर भी खराब हो गया है, उसे भी फिर से बनवाना पड़ेगा। स्त्री के गहने कपड़े की बात आती है तो सुनी-अनसुनी कर देते हैं, अथवा पहले से कह देते हैं कि हम गरीब हैं, मित्रों से कहा करते हैं, कि हम गरीब हैं, इस प्रकार सदैव ही वे गरीबी के विचारों में डूबे रहते हैं। उस पर फिर धनी होना चाहते हैं! तब यह कैसे हो सकता है? इसलिए यदि धनी होना है, तो सदैव धन के ही विचार करना चाहिए। धनवानों के जीवन-चरित्र पढ़ना और धनवानों के मन में जैसी उदारता रहती है, वैसी उदारता अपने विचारों में लाना चाहिए। साथ ही धनवानों ने पूर्व में कितना परिश्रम किया है तथा धन-प्राप्ति में उन्होंने कैसे-कैसे क्लेश उठाये हैं, उन क्लेशों को और जिम्मेदारियों

को उठाने को उद्यत होना तथा धन-प्राप्ति विषयक युक्तियाँ और चातुर्य का सपादन करना एवं दरिद्रता के विचार किसी समय भी मन में न आने देना—यही धन प्राप्ति का सरल साधन है।

विचारों के बल से ही रोग की निवृत्ति और रोग की वृद्धि भी होती है। उपर्युक्त रीति से विचारों के द्वारा जैसे दरिद्रता दूर की जाती है, वैसे ही नाना प्रकार के रोग भी विचारों से दूर किये जा सकते हैं। इस रोग-निवृत्ति का भी उपाय जानना चाहिए, क्योंकि जगत् में प्राय. सब ही रोग-ग्रसित हो रहे हैं। इसमें कई रोग तो सामान्य औषधि से और कई स्वत ही निवृत्त हो जाते हैं, इसलिए रोग उत्पन्न करना और नष्ट करना हमारे ही हाथ में है, क्योंकि ईश्वर की इच्छा है कि सब जीव नीरोग और सुखी रहें। परन्तु, रोग मनुष्यों की भूल से होता है, इससे प्रथम भूल को सुधारना चाहिए। उसका उपाय केवल आरोग्यता के विचार ही हैं। जब घर में लड़के बीमार पड़ते हैं, तब स्त्रियाँ रोग और भय के विचार अधिक करती हैं, और उन विचारों से कितने ही लड़के मर जाते हैं। मैंने खुद देखा है कि स्त्रियाँ लड़कों को रोग से बचाने के लिए जितना उपाय करती हैं, उतनी जल्दी लड़के मर जाते हैं, इसका कारण केवल उनके विचार ही हैं। वे सदा ऐसे विचार करती हैं कि अमुक स्त्री के चार लड़के दो वर्ष में मर गये। अब पाँचवाँ हुआ है, उसकी भी वह बड़ी खबरदारी रखती है, तथापि वह बहुत क्षीण हो गया है, जीने की आशा नहीं, डाक्टर ने तो जवाब दे दिया। यहाँ विचार करने की बात है कि वह लड़का भी सातवें दिन मर गया। यदि यह विचारों का ही प्रभाव हो तो ऐसा क्यों होता है ?

ऐसे तर्क-वितर्क करनेवाले बहुत हैं, उनको जानना चाहिए कि सब माताएँ चाहती हैं कि हमारे लड़के जीते रहें। इस विचार का जितना बल होता है, उससे अधिक बल अति स्नेह करनेवाली अज्ञान माताओं-पर दूसरे मलिन विचारों का होता है, क्योंकि वे अपने लड़के के लिए अपने मन में सदा डरती रहती हैं कि इसे दीए की टेम न लग जाय, कहीं गिर न पड़े, इसे कोई उठा न ले जाय। मुहल्ले में खेलता है, कहीं कुत्ता न काट खाय, यह बीमार है, इसका रोग मिटेगा या नहीं, किसी की नजर न लग जाय। यदि यह मर गया, तो मैं क्या करूँगी, ऐसे भय के विचार ही सदा उनकी आँखों के आगे नाचा करते हैं। इन विचारों से अनेक माताएँ लड़कों को बीमार कर डालती हैं। रोग के लिए वे बाह्य उपाय करती हैं, परन्तु हृदय बिगड़ा होने से बाह्य उपाय किंचित् भी लाभकारी नहीं होता, क्योंकि लड़कों को अच्छा रखने के लिए जितने विचार वे करती हैं उससे अधिक वे बीमार पड़ते हैं। स्मरण रहे कि जहां परस्पर विरोधी विचारों का सामना पड़ता है, वहाँ दोनों का बल घट जाता है। उनमें जो बलवान् होता है उसी की जय होती है। जैसे बहुत से दूध में थोड़ी खटाई पड़ने से दूध फट जाता है, वैसे ही अच्छे विचारों को थोड़े से बुरे विचार भी बिगाड़ देते हैं, इससे अच्छे विचारों का बल कम हो जाता है। इसी लिए माता के अच्छे विचार कम होने से वे निर्बल होते और बुरे विचार अधिक तथा बलवान् होने के कारण लड़के बीमार पड़ते और मर जाते हैं। इससे यदि लड़कों को नीरोग और चिरजीव रखना हो, तो सदैव शुभ विचार करना चाहिए।

जो लोग रोगी की खबर लेने जाते हैं वे रोगी को दूसरों के रोग की बातें सुना कर उसके रोग को और बढा देते हैं। ऐसे ही जब हमें कोई रोग होता है, तब हम उस रोग के ही विषय में विचार किया करते हैं कि ऐसे रोग से किस किस की हानि हुई। जैसे यदि हमारी आँखें दुखती हैं, तो अपने इष्टमित्रों में जिन जिन की आँखें दुखती हों उनकी बातें करते हैं, और मन में डरा करते हैं कि जैसे हमारे काका तथा हमारे मित्र की आँखें अब तक अच्छी नहीं हुई और हमारे पड़ोसी की आँखें चली गई, यदि वैसी हमारी दशा होगी तो हम क्या करेंगे ? जब हमारी आँख दुखती है, तब कितने लोगों की आँखें अच्छी हो गई इसका विचार नहीं करते, परन्तु जिनकी आँखें खराब हो गई हैं, उन्हीं का हिसाब लगाया करते हैं और हमारी बीमारी में जो मित्रादि हाल पूछने आते हैं, वे भी उलटे कुछ भय के विचार ही हमारे मन में भर जाते हैं, वैसे ही आजकल स्त्रियाँ भी रोग के विचार फैलाने का काम करती है। जैसे कि जो बीमार है उसके पास जाकर बड़े स्नेह से कहती हैं, ओहो ! तुम्हें इतने जोर का ज्वर है ? ऐसा ही ज्वर मेरे बाप को आया था, जिससे वे तीन ही दिन में जाते रहे। हमारे पड़ोस में एक बनिया है, उसका अभी विवाह हुआ है, उसे भी ऐसा ही ज्वर आता है। डाक्टर कह गया है कि आशा नहीं है। देखो, क्या होता है। आज कल ज्वर बड़ा जहरीला आता है, इससे भैया जरा सँभालना ! ऐसी कई शंकाएँ वे रोगी के मन में बीज रूप से जमा देती हैं। इसी प्रकार पुरुषों में से एक कहता है कि इस ज्वर में खाँसी न हो तो अच्छा, खाँसी होगी तो बड़ी कठिनता होगी। दूसरा कहता है कि इस ज्वर

में खाँसी हुए बिना तो रहता ही नहीं। मेरे भाई को भी ऐसा ही बुखार आया और तत्काल खाँसी हो गई। तीसरा कहता है कि खाँसी तो ठीक, परन्तु छाती को सँभाल रखनी चाहिए। डाक्टर कहता है कि ऐसे ज्वर में फेफड़ा सूज जाता है। चौथा कहता है कि यह डाक्टर अच्छा नहीं कर सकता। इससे कई रोगी धोखा खा चुके हैं, इससे बड़ी फीस वाला डाक्टर बुलाना चाहिए। ऐसी बातें रोगी के पास बैठकर करते हैं, किन्तु इसका क्या परिणाम होगा, इसका वे किंचित् भी विचार नहीं करते और न यह सोचते हैं कि इन बातों से रोगी पर कैसा जहरीला असर होगा। शीघ्र अच्छा होने के बदले उसका रोग और बढ जाता है, क्योंकि रोग से निर्बल होने के कारण मस्तक बहुत निर्बल हो जाता है, इसलिए रोगी स्वतः कुछ विचार नहीं कर सकता। जो कुछ सुनता है, उसे शीघ्र पकड लेता है जिसका परिणाम बहुत बुरा होता है। इसलिए, अपना या दूसरे का रोग घटाना हो तो उसके पास रोग और रोगियों की बातें कदापि न करना चाहिए, बरन् उसे धैर्य और शीघ्र अच्छा होने की बातें सुनाना ही अत्यन्त हितकर हो सकता है।

हमारे शरीर में किसी प्रकार का रोग अपने मन से नहीं आता, बरन् जब हम उसे बुलाते हैं तभी वह डरते-डरते आता है, क्योंकि हम रोग के ही विचार अधिक करते हैं; अर्थात्—रोग की इच्छा करके ही रोग को बुलाते हैं, अत रोग आता है। इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने यह सिद्ध किया है कि परम कृपालु परमात्मा ने हमारे शरीर की रचना ऐसी की है कि उसमें किसी प्रकार के रोग हमारी इच्छा के बिना स्वत. नहीं आ सकते, हमारे शरीर में ज

रोग आता है, उसे हमारी साँस बाहर निकाल देती है। इसी प्रकार कितने ही रोग पसीने से निकलते हैं, तो कितने ही मल-मूत्र द्वारा निकल जाते हैं। कितने तो जठराग्नि भस्म कर देती हैं और कितने ही मन तथा बुद्धि के बल से नष्ट हो हाजाते हैं और कितने ही शुद्ध रक्त-सञ्चार से नष्ट होते हैं। ऐसे ही हमारे शरीर में घुसे हुए कई रोग हमारे बुरे विचारों से शरीर को नष्ट करते हैं। ईश्वर की ऐसी इच्छा है कि मनुष्य सदा नीरोग और सुन्दर रहे तथा जब तक पूर्ण ज्ञान को न प्राप्त हो, तब तक उसकी उन्नति होती रहती है, इससे हमारे शरीर में कोई रोग अपनेआप नहीं आ सकता, क्योंकि हमारे शरीर में आने पर उसका सत्कार नहीं होता, वरन् उलटे उसे लड़ाई करनी पड़ती है। कड़वी दवा पीनी पड़ती है। इस से हम चाहें तो रोग को सहज रीति से दूर कर सकते हैं। रोग को दूर करना शरीर का स्वाभाविक धर्म है। इसमें प्रकृति का कुछ विरोध नहीं। इसलिए अपने ज्ञान और आत्मबल से हम भारी रोग को भी बहुत सरलता से निवृत्त कर सकते हैं। ऐसा होने पर भी हम रोगी रहें, तो इसमें किसका दोष है ? हमारा ही दोष तो है। जगत् में जो रोग हैं, वह सब मनुष्य की भूलों के ही फल हैं। यदि हम भूलों को सुधारें तो कितने ही रोग दूर कर सकते हैं। इसी से महात्मा लोग कहते हैं कि तुम्हारा भाग्य सुधारना तुम्हारे हाथ है, तुम चाहो तो रोगादि सब दुखों को दूर कर सकते हो।

बुरे विचार करने से केवल अपनी ही हानि नहीं होती, किन्तु दूसरों की भी हानि होती है और उसका प्रभाव बहुत दूर तक पहुँच सकता है। जैसे किसी ने अपने लड़के पर सामान्य

अपराध के कारण क्रोध किया कि उस क्रोध का विचार वहाँ से निकल कर आगे बढा, मार्ग में दूसरों के क्रोध के विचारसे मिल कर अधिक पुष्ट हुआ, इसके बाद वह विचार फिरते-फिरते किसी अन्य देश में किसी मनुष्य के मस्तक में जा घुसा, जो अपनी स्त्री से लड़ रहा था, तो उसने उस क्रोध की सनक में अपनी स्त्री को बुरी तरह पीटा, किन्तु जब उसका क्रोध शान्त हुआ, तब उसे बड़ा पश्चात्ताप और आश्चर्य हुआ कि सामान्य से अपराध पर मैंने स्त्री को इतना क्यों पीटा। जरा-सी कढी बिगड़ गई या किसी खास काम से देर हो गई, उस पर इतना बड़ा दंड क्यों दिया ? इत्यादि। क्योंकि उसे जब क्रोध आया था, तब उसकी यह इच्छा थी कि स्त्री को जरा डाँट देना चाहिए कि फिर उससे ऐसी भूल न हो, परन्तु डाँट के बदले इतनी मार-पीट करने का कारण वह भी नहीं जानता था। दूसरे मनुष्य के क्रोध के विचार से इसके क्रोध के विचार मिल गये, उसी से उसके क्रोध का बल बढा। सारांश, प्रत्येक विचार अपनी जाति वाले विचार को अपनी ओर खींचता है। इससे जहाँ क्रोध के विचार होते हों, वहाँ दूसरे के किये हुएक्रोध के विचार आ मिलते हैं और जहाँ लोभ के विचार होते हों, वहाँ दूसरों के लोभ के विचार आ मिलते हैं। ऐसे ही विषय-वासना आदि के विषय में भी जानना चाहिए। ऐसे ही जहाँ परमार्थ के—दया, सत्य, अहिंसा, प्रेम, ज्ञान के—विचार होते हों उनमें उसी जाति के विचार आ मिलते हैं इससे पहले के छोटे विचार पुष्ट होकर प्रत्येक विचार अपनी जाति के विचारों को स्वाभाविक रीति से खींचते हैं। इस बात को प्रत्येक मनुष्य नहीं समझ सकता, इससे जो विचार की

शक्ति, विचार का प्रभाव, तथा रहस्य, स्वभाव और विचार-शक्ति की महिमा को नहीं जानते, उनके मन में यह बात नहीं आ सकेगी तथापि शुभेच्छा का अभ्यास करने से कालांतर में यह विषय स्वत समझ में आने लगेगा ।

यह जगत् सकल्प ही से उत्पन्न हुआ है । सकल्प ही से स्थित है । इससे प्रकट है कि सकल्प क्या नहीं कर सकता । पूर्व में जो अखड अनन्त आनद स्वरूप था, वह अपने सकल्प ही से दबकर अपनी अनतता को भूल गया और अपने को परिमित मानने लगा । इससे सिद्ध है कि सकल्प मे विचित्र सामर्थ्य है । सकल्प क्या नहीं कर सकता ? यही अखड परमात्मा अपने अद्वैत रूप को भूलकर अपने को नाना योनियों में देखते हुए कहीं दुखी कहीं सुखी मानने लगा और अपने चैतन्य स्वरूप को भूलकर अपने को कर्ता-भोक्ता मानने लगा, यही सकल्प या विचार का चमत्कार है।

उन्नति मार्ग का मूल-मत्र शुभ सकल्प है । सकल्प ही से इस जगत् की उत्पत्ति और स्थिति है । यह रहस्य जिसको ज्ञात हुआ है, वह उन्नति के मार्ग पर बहुत शीघ्रता से चल सकता है ; मार्ग में कठिनाइयाँ बहुत आती हैं , परन्तु ये कठिनाइयाँ उसको हानिकारक नहीं होतीं । उसको इस लोक में अधिक दु ख नहीं सताता , किन्तु उसको यह लोक और परलोक दोनों दुखदायी हो जाते हैं ।

यह जगत् सकल्पमय है, सकल्प ही से उत्पन्न हुआ है—यह बात जानने वाले को दु ख का सामना कम करना पड़ता है । जब यह निश्चय हो जाता है कि जितने सुख-दु ख हैं, वे हमारे

ही सकल्पों के फल हैं, तो वह दुःख अधिक दुःखदायी नहीं हो सकता। जैसे अपने हाथ से जो चोट लग जाती है, वह इतनी दुःखदायी नहीं होती, परन्तु उतनी ही चोट दूसरे से लग जाय तो अधिक दु.खदायी प्रतीत होती है। संकल्प से विश्व की उत्पत्ति माननेवाले को इससे दु ख नहीं होता, या कम होता है क्योंकि वह जानता है कि जिन संकल्पों से इस दु.ख की प्राप्ति हुई है, उनके विरोधी सकल्पों को विचारों को करने से पूर्व सकल्पों का बल क्षीण हो जाता है। यही धर्मशास्त्र की नींव है, इसी तत्व के अनुसार काम्य कर्म के नाना प्रयोग और अनेक प्रकार की उपासना कही गई है। इन सबको एक ही तत्व दृष्टिगोचर होता है। वह ये हैं कि अनुकूल सकल्पों का उत्पन्न करना और पूर्व के प्रतिकूल सकल्पों का त्याग करना चाहिए।

कर्म उपासना का रहस्य यदि देखा जाय, तो यही है कि सुख में बाधा डालनेवाले कर्म जीव से अज्ञानवश हो गये हैं, अत उनके विरोधी सकल्प दृढता से स्थापित करना चाहिए। जप से यही काम होता है। सकल्प का सीधा दृढीकरण मंत्र जप से ही होता है, इससे भगवान् ने भी गीता में कहा है कि 'यज्ञानां जप-यज्ञोस्मि' अर्थात् — सब यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ।

हमारे सब सुख-दुखों का कारण अज्ञान है। सकल्प उठते ही अज्ञान से अपने सकल्प में दबकर जीव भाव की प्राप्ति होती है, यह अज्ञान ही अपना रूप बदल कर जीव के लिए दु.खदायी होता है। इसलिए दु.खनिवृत्ति की इच्छावाले के लिए दुःख के विरोधी सकल्प (विचार) करना ही परम हितकर है। शास्त्रों में दु खनिवृत्ति का उपाय केवल ज्ञान प्राप्ति ही बताया है। 'ज्ञाना-

देवतु कैवल्यं' इत्यादि, ज्ञान ही से दुःख-निवृत्ति और कैवल्य या-मोक्ष-प्राप्ति कही है। उस ज्ञान प्राप्ति का अर्थ दृढ संकल्प ही है। गायत्री-जप से ही कार्य सिद्धि होती है और इसमें द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यमात्र का अधिकार है, इससे अपने अधिकारानुसार गुरुमुख से अन्य मंत्रों का भी ग्रहण कर जप करने से उक्त दृढ संकल्प की पूर्ति हो सकती है। और वह ज्ञान का अधिकारी भी अवश्य हो सकता है, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि संकल्प में ऐसा महान् बल है। जो शुभ संकल्प या शुभ विचारों को निरंतर अपने मन में स्थान देंगे, वे अवश्य अपने प्रत्येक इष्ट कार्य की सिद्धि करेंगे, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं। इस विषय में मेरा पूर्ण विश्वास है। मैंने अनेक बार दृढ संकल्प और दृढ विचार के प्रभावों को स्वतः अनुभव किया है और पूर्व के हमारे महर्षिगण तथा आधुनिक पाश्चात्य नेपोलियन आदि तथा महात्मा तिलक, गोखले आदि प्रत्यक्ष प्रमाणभूत हैं।

यदि हम अपने विचारों का परिणाम और दूसरों पर असर करने की शक्ति और अपने हृदय में दूसरों के विचार उत्पन्न होने की सामर्थ्य आदि सब दशाओं का यथार्थ रूप से जान लें, तो कभी दुःख, पाप रोग या मृत्यु के विचार नहीं करेंगे। दुःख तथा निराशा के विचार करने से स्वतः अपनी और दूसरों की कितनी हानि होती है, इस बात का यदि हम अच्छी तरह जानें, तो त्रास हुए बिना न रहेगा। इस विषय में ज्ञानवान् सूक्ष्मदर्शी कहते हैं कि विचार अपना अच्छा या बुरा असर दिखाये बिना नहीं रहता। जैसे छोटे से बट के बीज से विशाल वृक्ष हो जाता है, वैसे ही छोटे-से विचार का महान् फल होता है।

विचार कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

विचार मस्तिष्क से उत्पन्न होते हैं। मस्तिष्क केंद्रमाध्यम यंत्र है। इसी से विचारों की उत्पत्ति होती है। अन्य यंत्रों की अपेक्षा मस्तिष्क अधिक शक्तिशाली और पूर्ण है। मस्तिष्क में इतना प्रचण्ड बल है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। यद्यपि यह शांत और स्थिर प्रतीत होता है, परन्तु इसी केन्द्र से विचार बाहर निकलते हैं। इन विचारों की उत्पत्ति इच्छा के सबल या निर्बल, होने अर्थात्—तीव्र इच्छा और सामान्य इच्छा पर निर्भर है।

मस्तिष्क-वर्णन

मस्तिष्क दो गोलार्द्धों से बना हुआ है। उन दोनों के बीच में एक बड़ी गहरी दरार है। बड़े मस्तिष्क में श्वेत वर्णवाला पदार्थ भरा है और मज्जा के चारों ओर धूसर वर्ण का एक स्तर है। उसमें गाँठें-सी बनी हुई हैं। ये सब रक्तवाहिनी नाड़ियों की घनी हुई एक झिल्ली से ढकी हैं। इसी को मस्तिष्क कहते हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि मस्तिष्क का एक भाग गर्दन से रीढ की हड्डी के भीतर कमर तक चला गया है, इसीसे शरीर के प्रत्येक अङ्गों में मस्तिष्क से १२ जोड़े निकल के जुड़े हुए हैं।

मस्तिष्क का यह भाग अनुभव, इच्छा, बुद्धि आदि का

स्थान है। मस्तिष्क के इस भाग को हानि पहुँचने से मानसिक कार्य करने का सामर्थ्य बहुत न्यून हो जाता है।

मस्तिष्क की निचली सतह से नाड़ियों के १२ जोडे निकलते हैं, उनमें एक जोडे को कपाल की नाड़ी कहते हैं।

प्रत्येक जोड़ा शरीर में इन्द्रियों को ज्ञान देता है। उनमें एक जोडा गध का ज्ञान, दूसरा दृष्टि का, तीसरा जोड़ा आँख की पुतली को हिलाता है और चौथे पाँचवें का सम्बन्ध मुख के जबड़े और जीभ से होता है और छठेका सबन्ध उन पट्ठों से है, जो आँख की पुतली हिलाते हैं। सातवाँ मुखमडल के पट्ठों को हिलाता है। आठवाँ कानो में लगा है, नवाँ जिह्वा से स्वाद लेने में सहायक होता है। दसवाँ-ग्यारहवाँ कठ, हृदय, आमाशय तथा पित्ताशय को सूत्र भेजता है और बारहवाँ जिह्वा से बोलने में सहायक होता है।

मस्तिष्क-शक्ति

मनुष्य सांसारिक वस्तुओं का अनुभव पाँच ज्ञान इन्द्रियों से करता है। उनकी सूक्ष्म नाडियाँ मस्तिष्क से मिली हैं, जिनका अनुभव पाँचों इन्द्रियाँ करती हैं। उनकी सूचना तत्काल मस्तिष्क को होती है। ये इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं तथा सांसारिक सुख की मुख्य साधन हैं। इससे हमें इन पाँचों इन्द्रियों को सरल और स्वस्थ रखना परमावश्यक है। एक इन्द्री का कार्य दूसरी नहीं कर सकती। जैसे आँख सुन नहीं सकती, कान देख नहीं सकते। सामर्थ्य से अधिक काम लेने से

इन्द्रियों पर आघात पहुँचता है। इससे जब इन्द्रियों पर आघात होता है, तो मस्तिष्क को सन्देश पहुँचने में देर नहीं लगती। क्योंकि मस्तिष्क से सब नाड़ियों का जाल निकल कर सब शरीर में फैला हुआ है। ऊपरी त्वचा वाल-नख आदि को छोड़कर शरीर का कोई भाग नाड़ियों से रहित नहीं है। जब तक मस्तिष्क किसी बात की सूचना को ग्रहण न करे, तब तक प्राणियों को उन विषयों का ज्ञान नहीं होता। शरीर के किसी अंग पर विपत्ति आ पड़े, तो मस्तिष्क से ही सहायता मिलती है। यदि अँधेरे में पैर के तले रस्सी आदि पड़ जाय, ता यह शका होती है कि कहीं सर्प न हो। उस समय मस्तिष्क में बड़ी हलचल मच जाती है। उस विपत्ति को दूर करने के लिए कितने ही अंगों को एक साथ आज्ञा होती है। सर्वप्रथम आँखों को आज्ञा होती है कि अँधेरे में शीघ्र देखने का उद्योग करो। पैर को आज्ञा होती है कि शीघ्र ही अलग हटो। हृदय को आज्ञा होती है, तो वह तीव्रता से धड़कने लगता है। हाथों को छड़ी आदि लेकर सावधान हाने की आज्ञा मिलती है और वाणी को पुकारने की आज्ञा मिलती है। इस प्रकार जब मस्तिष्क से आज्ञा होती है, तब सब अग अपने-अपने कार्य में तत्पर हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मस्तिष्क सब अगों में मुख्य अग है। मस्तिष्क की सहायता न हो, तो मृत्यु का होना सम्भव है।

मस्तिष्क बनने के लिए शुद्ध रक्त की आवश्यकता होती है। जो पदार्थ मनुष्य खाता है, वह पाकस्थली में पित्ताग्नि से पकता है। उसका स्थूल भाग मल होकर बाहर निकल जाता है, और सूक्ष्म भाग रक्त बनकर शरीर का पोषण करता हुआ मास बनता है

और मांस से मेदा, उससे अस्थि और अस्थि से मज्जा, फिर उसके भी सूक्ष्म भाग से वीर्य बनता है, इसलिए सूक्ष्म भाग बनाने वाले सात्विक पदार्थ अधिक खाना चाहिए, जिससे शुद्ध रक्त अधिक बने। क्योंकि मस्तिष्क के श्रम अथवा मानसिक उद्योग से रक्त की शक्ति घटती है और रक्त, हृदय से मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होता है।

बड़े-बड़े महात्मा और बुद्धिमान् पुरुष वीर्य की रक्षा करते हुए भी निर्बल प्रतीत होते हैं, इसका कारण यही है कि उनको मस्तिष्क से अधिक काम लेना पड़ता है, जिससे रक्त आदि पोषक भाग विचारशक्ति के साथ अधिक खर्च होते हैं। रात-दिन पढ़ाई के श्रम से विद्यार्थी का शारीरिक बल भी नष्टप्राय हो जाता है, क्योंकि चिंता, भय, विचार आदि के कारण रक्त की गति मंद हो जाती है, और जब रक्त की कमी हुई, तो बल कहाँ से बढ़े ? परन्तु बुद्धिमान् मनुष्यों का मस्तिष्क बड़ा बलवान् होता है, जो भिन्न भिन्न प्रकार के अनुभवों को उत्पन्न करता है। अतः यदि मस्तिष्क से अधिक कार्य लिया जायगा, तो इससे भी निर्बलता अवश्य बढ़ेगी।

मस्तिष्क को बलवान् बनानेवाले खाद्य पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं—सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। उनमें सतोगुणी पदार्थ का बहुत सा भाग मस्तिष्क बलवर्द्धक है। रजोगुणी पदार्थ शरीर में एक प्रकार का वेग या जोश उत्पन्न करते हैं, परंतु मस्तिष्क की शक्ति को शीघ्र व्यय कर देते हैं। इसी प्रकार तमोगुणी पदार्थ केवल मेदा बढ़ा कर शरीर को मोटा करते हैं, किन्तु मस्तिष्क को सहायता देने के अतिरिक्त कई हानि

करते हैं, क्योंकि शरीर को मोटा करनेवाले पदार्थ मस्तिष्क की कदापि बलवृद्धि नहीं कर सकते, इसलिए सदा सतोगुणी पदार्थ का ही सेवन अधिक करना चाहिए। जैसे दूध, घी, चावल, जौ, गेहूँ आदि पदार्थ और केला, अंगूर, सेव आदि नाना प्रकार के फल तथा वनस्पति आदि हलके भोजन करना अधिक हितकारी हैं।

मस्तिष्क की निर्बलता का कारण

अनुचित भोजन, अशुद्ध वायु-सेवन, मलिन वस्त्र धारण तथा शरीर को मलिन रखना, अधिक विचार करना, इन कार्यों से और मादक वस्तु सेवन, तंग वस्त्र, तंग जूता पहनने से मस्तिष्क पर अधिक बोझ पड़ता है। अधिक व्यायाम करना या किंचित् भी व्यायाम न करना, इससे भी मस्तिष्क निर्बल पड़ जाता है। बहुत कोलाहल में पढ़ने और पीठ झुकाकर पढ़ने से, कम प्रकाश में पढ़ने से मस्तिष्क को बहुत हानि पहुँचती है, वैसे ही क्षुधा लगने पर व्यायाम करने से तथा भोजन करके तत्काल लिखने-पढ़ने से या विशेष विचार करने से भी आमाशय और मस्तिष्क दोनों को हानि पहुँचती है, क्योंकि भोजन पचाने के लिए आमाशय रक्त को अपनी ओर खींचता है, और मानसिक कार्य करने के लिए मस्तिष्क अपनी ओर खींचता है, इससे भोजन करके तत्काल कोई कार्य करना अच्छा नहीं। वैसे ही मांस, खटाई, मिरचा, रूक्ष अन्न, तथा सड़ा-गला एवं बासी अन्न, और देर में पचनेवाला भोजन तथा अफीम, गाँजा, भाँग, ताड़ी, तमाखू, सिरका आदि तथा अति मैथुन, हस्त-

मैथुन, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि कार्य मस्तिष्क को हानि पहुँचानेवाले हैं।

अधिक लिखने-पढ़ने से तथा रात्रि को अधिक जागने और नियम-विरुद्ध कार्य करने से मानसिक रोगों से, स्वास्थ्य पर ध्यान न देने और विचार-सम्बधी कार्य अधिक करने से असह्य विक्षिप्तता रोग, पागलपन उत्पन्न हो जाता है। सिर में पीड़ा, नींद कम आना, स्मरण-शक्ति घट जाना, चक्कर आना अरुचि, मंदाग्नि, स्वप्नावस्था में वीर्यपातादि लक्षण प्रथम अवस्था के हैं। कुछ दिनों बाद रोगी का स्वभाव भी बदल जाता है। क्रोध और चिड़चिड़ापन बढ जाता है। मुख की कांति जाती रहती है और प्रत्येक कार्य में आलस्य आदि लक्षणों से प्रकृति सूचना देती है कि अब तुमको सँभलना आवश्यक है। यदि रोगी इतने पर भी न चेते तो रोग बढ जाता है। आँखों में निर्बलता आ जाती है और प्रमेह, नपुंसकता, पक्षाघात, लकवा, मलावरोध, अग्निमांद्य, शरीर का पीलापन आदि भयंकर रोग होकर जीवन को नष्टप्राय कर देते हैं। इससे प्रथमावस्था से ही इसका उपाय करना चाहिए।

मस्तिष्क की निर्बलता-निवृत्ति का उपाय

मस्तिष्क की निर्बलता से सब कार्य अधूरे होते हैं। अतः मस्तिष्क को बलवान् बनाने के लिए परीक्षित प्रयोग नीचे दिये जाते हैं। इसमें प्रथम शारीरिक स्वास्थ्य की आवश्यकता है और स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए नियमित आहार-विहार अर्थात् जहाँ

तक हो सब काम नियम-पूर्वक करना चाहिए, जैसे ब्राह्म मुहूर्त में उठना, शौच-स्नान, व्यायाम, भोजन, वायु-सेवन, शयन आदि कार्य नियम-पूर्वक उपयुक्त रीति से करना आदि नियमानुकूलता का मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की शक्ति को घटानेवाले तमोगुणी या रजोगुणी पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए। मादक पदार्थ विशेषतः बुद्धि और मस्तिष्क को हानि करनेवाले होते हैं। काम, क्रोध लोभ आदि को त्याग कर शांति धारण करना तथा सध्या-वदन, प्राणायाम करना, दया, धर्म, परोपकारादि गुणों को धारण करना परम उपयोगी है। इसी प्रकार निम्नलिखित क्रियाएँ भी इसमें बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं—

सीधे खड़े होकर सिर को जहाँ तक हो पीछे को झुकाओ। इससे छाती और पेट का भाग ऊपर उभरा होगा और सिर नीचे होगा। दूसरी रीति—गर्दन ऊपर को करो, जिससे छाती ऊपर की ओर होगी। कुछ काल इसी रीति से रहो। तीसरी रीति—अपने हाथों का जमीन पर रख कर दीवाल के सहारे नीचे सिर ऊपर पैर करके खड़े हो जाओ। इस क्रिया को अपने सामर्थ्य भर करो थकने तक या अधिक देर करने से हानि होती है। इस क्रिया को योगशास्त्र में विपरीत करणी कहा है। इन क्रियाओं से मस्तिष्क, छाती, हृदय, ग्रीवा, बाजू, पीठ की रीढ आदि सब अंगों का अधिक बल बढता है और वे पुष्ट होते हैं। ऐसे ही सब शरीर बलवान् होता है, क्योंकि इन अंगों में बडे महत्व की नाड़ियाँ हैं, जो अद्भुत कार्य करती हैं। जैसे पीठ की रीढ निर्बल रहने से मस्तिष्क भी निर्बल रहता है, क्योंकि इस भाग में मस्तिष्क के नीचे वे नसें हैं, जो मस्तिष्क को बलवान्

बनाती हैं और साथ ही शरीर की पाचनशक्ति को पुष्ट करके अन्य अंगों को बलवान् बनाने में सहायक होती हैं।

कंठ के मध्य भाग में एक ऐसी ग्रंथि है, जिस पर दबाव पड़ने से प्राणों का निरोध होता है और मेरुदंड तथा मस्तिष्क के कई भागों पर तीव्र प्रभाव पड़ता है।

निम्नलिखित औषधियाँ भी मस्तिष्क को बलवान् बनाने और स्मरणशक्ति-वर्द्धन में परमोपयोगी सिद्ध हुई हैं, इससे पाठकों के लाभार्थ लिखी जाती हैं—

मूँगा की भस्म, सारस्वतघृत, ब्राह्मी अरिष्ट, ब्राह्मीतैल सारस्वत चूर्ण, सारस्वतारिष्ट, माल कँगनी का तेल और बादाम आदि फलों का बलानुसार युक्तिपूर्वक सेवन करना चाहिए। पाठकों के लाभार्थ और सर्वजन उपकारार्थ मेरा स्वत का कई बार का अनुभूत तथा अन्यों पर अनुभव किया हुआ प्रयोग भी यहाँ लिखा जाता है, जिससे कि निर्बल मस्तिष्कवाले भी लाभ उठा सकें—

ब्राह्मी १ तोला, बच ६ माशे, मीठा कूट ६ माशे, मालकँगनी १ तोला, वंसलोचन १ तोला, छोटी इलायची के दाने १ तोला, कद्दू के बीज २ तोला, उस्तखद्दूस ६ माशे, बनफशा ९ माशे, धनियाँ ९ माशे, गोरखमुंडी ९ माशे, गुलाब के फूल १ तोला, बादाम की मींगी १० दाने, मिश्री ८ तोला, सबको पीस कर ९ माशे औषधि, चाँदी का वर्क १ या सोने का वर्क १, मलाई, मक्खन २ तोला में मिला कर खाने, तो मस्तिष्क की निर्बलता अवश्य दूर होगी।

मस्तिष्क को बलवान् बनाने का दूसरा उपाय

तुम आप ही अपने चरित्र के निर्माता हो, सकल्प-शक्ति ही मनुष्य के चरित्र को अद्भुत रीति से बनाती है। मस्तिष्क में अटूट शक्ति भरी हुई है। मस्तिष्क ही सांसारिक सिद्धियों का कारखाना है। कष्ट सहन करने के लिए यदि सकल्प शक्ति दृढ है, तो मस्तिष्क को चाहे जैसा ढाल सकते हो। बारंबार अभ्यास करने से ही इच्छा-शक्ति को उत्तेजना मिलती है और मस्तिष्क के केंद्र बलवान् बनकर चाहे जिस ओर इष्ट कार्यों में प्रवृत्त किये जा सकते हैं। जैसे मन का शासन शरीर पर होता है, वैसे ही इच्छा का शासन भी मन पर होता है। इच्छा आत्मसयम के लिए आत्म-शक्ति है, तथापि आत्मा को इस बात का निर्णय करना चाहिए कि किस रीति से इस शक्ति का प्रयोग किया जाय। इच्छा शक्ति को अपने अधिकार में करना परम आवश्यक है।

ससार में इच्छा-शक्ति संकल्प में परिवर्तित हो जाती है। सकल्प से मनुष्य और मनुष्य से संकल्प होता है। मनुष्य की इच्छा-शक्ति ही भाग्य को बनाती है और वही जीतनेवाली शक्ति है।

विजय की भावना जीवन के सब कार्य और व्यवहारों में तब तक सदा धारण करना चाहिए कि जब तक आत्मशक्ति आत्मविश्वास में स्थिर रूप से परिणत न हो जाय। जब कभी विपरीत भावना उठे, तब उसे बिलकुल झूठ समझो। इस रीति से सदा उदासीन भावों को दूर कर सकोगे।

एकांत में बैठकर मन को शान्त करो और पूर्वोक्त उत्तेजित भावों में प्रवृत्ति करके उत्साहित और आनन्दित होकर निम्न-लिखित भावना करो। कुछ समय तक इन भावनाओं का मन में संचार होने दो—

मैं सिद्धि के लिए सिद्ध हूँ। मैं अवश्यमेव सिद्धि प्राप्त करूँगा। मैंने सिद्धि को प्राप्त कर लिया है।

मानसिक स्वतन्त्रता मनुष्य की सबसे बड़ी जीत है। सदा यही ध्यान करना चाहिए कि मैंने दुर्गुणों को नष्ट कर दिया है, दूर कर दिया है, मैं स्वतन्त्र आत्मा हूँ।

प्रातःकाल एकान्त स्थान में शरीर को स्थिर और मन को शान्त करके उपर्युक्त भावना को बार बार मन में धारण करो और साथ ही यह विचार एवं निश्चय करो कि चुम्बक के समान इच्छा-शक्ति को साधने के लिए मैंने दृढ संकल्प कर लिया है। इस अभ्यास को चाहे जिस समय भी कर सकते हो। जो कुछ हो रहा है, उसकी परवाह न कर सीधे खड़े हो जाओ, गहरा श्वास लेते रहो और अंतर में महान् शक्ति की भावना करो।

मैं समर्थ हूँ, जो कुछ भी काम मैं हाथ में लूँगा, उसे अवश्य पूरा करूँगा। इस मन्त्र का पूर्ण शान्ति और आत्मसंयम से दिन में कई बार जप करो। यदि स्थिरता से इसे उपदेश मानकर अभ्यास करोगे, तो इच्छा शक्ति, आकर्षण-शक्ति, मानसिक शक्ति और व्यवहारिक योग्यता का विकास, अपने तथा दूसरों के कल्याण के लिए भी कर सकोगे। करना न करना तुम्हारे हाथ है।

जो इच्छा करिहो मन माहीं ॐ राम कृपा कछु दुर्लभ नाहीं।

उसके लिए यत्न करो। उस पर विचार करो, काम करो, तत्पर हो, आशा रखो, तुम्हारी इच्छा-पूर्ति शीघ्र होगी। जितनी शीघ्रता और निश्चय से मन उसमें लगेगा, उतनी ही शीघ्रता से कार्य-सिद्धि होगी इसमें किंचित् सदेह नहीं। करके देखो। जो आत्म-विजय करता है, उसको सर्व वस्तु सुलभ हो जाती है। उद्योगी मनुष्य को अवसर की कमी नहीं होती।

विचारों का उत्पत्ति-स्थान मणिपूरक चक्र है, जहाँ से परा-वाणी उत्पन्न होती है, वहीं से शुभाशुभ विचार उत्पन्न होकर सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा जब मस्तिष्क में पहुँचता है, तब उसका स्पष्ट ज्ञान होता है। ऐसे ही इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति आदि का केंद्रस्थान भी यही मणिपूरक चक्र है। विद्युत्-शक्ति को भेजने के लिए इजन आदि बडे-बडे यन्त्रों की आवश्यकता होती है, परन्तु विचार-शक्ति हमारे छोटे से यत्र से कपन, गरमी, शब्द, प्रकाश और लोह चुम्बकवत् मानस शक्ति, इच्छा-शक्ति, विचार-शक्ति, प्रेम-क्रोध, बुद्धि, बल आदि कई शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

जब मस्तिष्क से प्रेम, विरोध, प्रशसा या निन्दा की लहर उठती है, तब वह दूसरे के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालती है। तब पहले मस्तिष्क के प्रभाव से दूसरे मस्तिष्क में प्रेम या वैर उत्पन्न हो जाता है। यदि तुम किसी से प्रेम करोगे, तो वह भी तुमसे प्रेम करेगा। और वैर करोगे, तो वैर करेगा। बहुधा देखा गया है कि जैसे विचार तुम्हारे मस्तिष्क में किसी के प्रति उत्पन्न हुए, ठीक वैसे ही विचार उसके मन में भी उठे हैं।

मन का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और मस्तिष्क के भीतर

जो आकाश का भाग है उसमें प्रथम विचार उत्पन्न होता है। मस्तिष्काकाश महाकाश का व्यष्टिरूप से अवयव है। जब विचार या इच्छा इस मस्तिष्काकाश में फैलती है तब वहाँ से वायु के द्वारा महाकाश में फैल जाती है— अर्थात् इच्छाशक्ति की सूक्ष्म धाराएँ मस्तिष्क के परदे को फाड़कर अधिक बलवान् हुई तो शीघ्र बाहर निकलकर बड़े वेग से महाकाश में फैलती है और यदि इच्छा-शक्ति निर्बल हुई तो कठिनता से परदा तोड़कर आस-पास ही बिखर जाती है।

जब मनन क्रिया में मस्तिष्क चेष्टा करता है, तब स्थूल मस्तिष्क में पांशुवर्ण वाली प्रकृति के रजों की वृद्धि होती है। मृत्यु के बाद पशु शरीरों की परीक्षा करने से प्रतीत होता है कि विचारशील पुरुष का मस्तिष्क अन्यों की अपेक्षा केवल अधिक बड़ा ही नहीं होता, किन्तु उसमें आवृत्तियों की सख्या भी अधिक होती है। इन आवृत्तियों से पांशुवर्ण वाली मज्जातन्तुगत प्रकृति को जो मनन-क्रिया का समीपवर्ती यन्त्र है, बहुत अधिक स्थान मिलता है। ऐसे ही स्थूल शरीर और स्थूल मस्तिष्क व्यायाम द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, अतः जो उसको उन्नत और पुष्ट करना चाहते हैं, उनको प्रतिदिन निरतर मानसिक शक्तियों की वृद्धि और उन्नति के लिए मनन क्रिया का अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास से स्वाभाविक शक्तियाँ भी बहुत शीघ्र उन्नत होती हैं और उनका प्रभाव उपाधियों पर अधिक वेग से पड़ता है। यह अभ्यास नियमबद्ध होना चाहिए, जिससे इसका प्रभाव पूरा-पूरा होने से मानसिक-शक्ति की वृद्धि होती है और जीवन के

साधारण प्रश्नों पर पूर्वापेक्षा अधिकतर विचार करने में सफलता और सामर्थ्य प्राप्त होता है।

नीति एक न्यायशील वेतनाध्यक्ष है, जो सब को उतना ही देती है, जितना उसने कमाया है। एक कौड़ी भी वह अधिक नहीं देती। इससे जो उन्नत दिव्य शक्ति-रूप वेतन लेना चाहते हैं उनको गूढ़ विचार द्वारा उसे प्राप्त करना चाहिए। जिज्ञासुओं को जिस विषय में रुचि हो उसका एक ऐसा ग्रन्थ ढूँढ लेना चाहिए, जिसका कर्त्ता योग्य पुरुष हो, और जिसमें नये नये गूढ़ विचार हों। ऐसी पुस्तक के एक दो वचन धीरे-धीरे पढ़कर उन पर एकाग्र चित्त से गूढ़ विचार करे, परतु जितने समय तक विचार करे उससे दुगुने समय तक मनन करना बहुत उत्तम है; क्योंकि पढ़ने का प्रयोजन केवल नये नये विचारों और युक्तियों को प्राप्त करना ही नहीं, वरन् मानसिक शक्तियों को पुष्टि देना भी है, इससे आधघंटा प्रतिदिन इस अभ्यास में लगाना चाहिए, परतु नवशिक्षक के लिए पाव घंटा ही बहुत है, क्योंकि एकाग्रता पूर्वक गूढ़ विचार करने से उसको पहले-पहले थकावट प्रतीत होती है।

मनुष्य के मन में सदैव नवीन विचार उत्पन्न हुआ करते हैं। मानस-शास्त्र-वेत्ताओं ने यह सिद्ध किया है कि मनुष्य जो श्वास लेता है, उस प्रत्येक श्वास में तीन-तीन नये विचार उत्पन्न होते हैं—अर्थात् एक मिनट में ४८ से ५४ तक नये विचार उत्पन्न होते हैं, परतु जैसे बदूक में छर्रे भर कर छोड़ने से चारों ओर फैलकर कोई पूरा परिणाम नहीं होता, परंतु उन्हीं छर्रों की एक गोली बना कर मारने से उसका भयकर परिणाम होता है। वायु, जल,

भाफ, विद्युत, अग्नि आदि के परमाणु यावत् भिन्न भिन्न बिखरे हुए रहते हैं, तब तक उनमें कुछ भी शक्ति नहीं देख पड़ती, परंतु उनको एकत्र करने से उनमें अद्भुत् शक्ति उत्पन्न हो कर उससे बड़े बड़े अशक्य काम भी लिये जा सकते हैं। वैसे ही विचारों की शक्ति अपरिमित और अप्रतिहत, अप्रतर्क्य है, परंतु जब तक वे अनेक विषयों में फैले रहते हैं, तब तक उनका कुछ भी फल नहीं होता, परन्तु यदि उनको ध्यान द्वारा निरोध किया जाय अर्थात् उन विचारों के प्रवाह को रोक कर एक ही वस्तु पर स्थिर किया जाय तो उनमें अद्भुत् शक्ति उत्पन्न होकर साधक जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसके संकल्पमात्र से ही प्राप्त हो सकती है। जैसा कि छांदोग्य में कहा है—

यमन्तमभि कामो भवति यकामकामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति।

एकाग्र चित्त से मनुष्य जिस वस्तु की कामना करता है वह वस्तु कल्पना मात्र से ही उसे प्राप्त होती है।

ध्यान से भिन्न भिन्न विषयों के विचार की मन की चंचलता निवृत्त होकर उसे चाहे जिस विषय पर स्थिर करने का अभ्यास दृढ़ हो जाता है। जहाँ मन स्थिर हुआ कि विचारों का संयम आप ही-आप हो जाता है, क्योंकि मन ही से विचार किये जाते हैं और विचारों के संयम से मन केंद्रीभूत होकर वे विचार जिस वस्तु पर गिरते हैं उसे आकर्षित कर लेते हैं—अर्थात् मन की स्थिरता का विचार संयम द्वारा इच्छा-सिद्धि का अमोघ उपाय है, परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि विचारों में जो शक्ति है वह प्राण ही की शक्ति है—अर्थात् प्राण-शक्ति ही से विचार शक्तिमान् हैं या होते हैं। विचार के स्फुरण में

इसके अतिरिक्त ओजस्-पूर्ण व्यक्ति के चारों ओर एक प्रकार का प्रकाश फैला रहता है।

मस्तिष्क ही ओजस् के रहने का स्थान है। इसी मस्तिष्क में नाडियों का एक समूह है, जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। जो इस ब्रह्म-रध्र में ध्यान करता है, वह अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। इस मस्तिष्क को प्रकृति ने सब ओर से सुरक्षित कर रखा है। इससे हमको भी ओजस् उत्पन्न करके इसकी रक्षा करनी चाहिए।

जो कामी, क्रोधी और विषयी होता है, उसमें ओजस्, बल, पराक्रम नहीं होता। उसका मस्तिष्क निर्बल होता है। इससे मस्तिष्क को कभी बिगड़ने न देना चाहिए।

आहार से रक्त और रक्त से ज्ञान-तन्तु बनते हैं। ज्ञान-तन्तुओं से विचार उत्पन्न होते हैं; इसलिए सदैव सात्विक भोजन करना चाहिए।

आहार जीवन स्थिर रखने के लिए करना चाहिए। स्वाद के लिए नहीं। गरिष्ठ और चटपटा, खट्टा, रूक्ष भोजन नहीं करना चाहिए।

आहार की कमी से मस्तिष्क निर्बल हो जाता है और अधिकता से उसमें जड़ता आ जाती है, इसलिए उपयुक्त, हित-कर और मित भोजन करना चाहिए।

व्यायाम अपने बलानुसार अवश्य करना चाहिए, जिससे सब शरीर का संगठन हो। अति काम, क्रोध, लोभ मोह मस्तिष्क को उत्तेजित करते हैं, इसलिए इनसे सदा बचना चाहिए जिससे इनका अनिष्ट परिणाम मस्तिष्क पर न होने पावे। बिना सोचे

समझे मुँह से बात न निकालो । भलीभाँति सुन और समझ कर बोलने का प्रयत्न करो, परन्तु जहाँ तक हो, बोलना कम और काम अधिक करना चाहिए । सदा अतर-बाह्य पवित्र रहो । अपने विचार शुद्ध और पवित्र रखो । पवित्र और शान्ति के विचारों से मस्तिष्क में ओजस् उत्पन्न होता है ।

मस्तिष्क का प्रथम भाग बुद्धि-सम्बन्धी कार्य करता है । और छोटा मस्तिष्क जो मेरुदण्ड का छोर है, वह इच्छानुवर्तिनी मांस पेशियों को गति प्रदान करता है ।

अनुचित भाव तथा विचारों का मस्तिष्क में प्रवेश न होने दो, दृढता से मन ही-मन कहो कि हे मलिन विचारो, तुम्हारे लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है । इससे जाओ, चले जाओ, तो वे तत्काल चले जायँगे, लोप हो जायँगे ।

सायकाल या रात्रि के एकात में नेत्र मूँद कर अपने भीतर देखो और जो-जो त्रुटियाँ तुम में हों, उनको निकालने का यत्न करो, और जो बात तुम चाहते हो, उसकी मन में कल्पना करो । बारबार ऐसा चिंतन करने से मस्तिष्क में उनका ध्यान चिरस्थायी हो जायगा और जीवन में भीतर-ही-भीतर परिवर्तन होने लगेगा ।

नित्य उच्च विचार या वाक्य सावधानी से चुनो और उन्हें कठस्थ कर लो, फिर साधन करते समय उनका स्मरण करो और देखो कि कठस्थ हैं कि नहीं । जब वह मस्तिष्क में स्थिर हो जायँ तब और नये भावों का सग्रह करो ।

जिन लोगों ने तुम्हें हानि पहुँचाई है, तुम्हारी निन्दा की है, अथवा जो तुम्हारे शत्रु हैं, उनके व्यवहारों को बिलकुल भूल जाओ । उनके अनिष्ट प्रभावों को अपने मस्तिष्क में सग्रह मत

होने दो। उनके प्रति क्षमा और दया के विचारों को प्रेरित करो। कभी किसी की बुराई न करो, अन्यथा उसका बुरा असर तुम पर पड़े बिना न रहेगा।

एकांत में बैठकर दस मिनट तक नेत्र मूँद कर मस्तिष्क में पीत वर्ण का ध्यान करो, इससे तुम्हारे मस्तिष्क में ओजस् की वृद्धि होगी। और मस्तिष्क बलवान् होगा।

आँख के सामने पीले रंग की ज्योति का ध्यान करो, तो तुम्हारे देह का आलस्य दूर होकर बुद्धि तीव्र होगी। काम, क्रोध, चिंता, निराशा, भय, मोह, उद्वेग, क्षोभ आदि विचारों से प्राण की गति तीव्र हो जाती है। उससे जीवन शक्ति का ह्रास होकर मृत्यु तक हो जाती है; इसलिए सब बुरे विचारों और भावों को त्याग कर सदा उच्च और शुद्ध भाव ही मन में रखना चाहिए।

विचारों के रूप और रंग

अनुभवी महात्मा लोग कहते हैं कि जगत् की प्रत्येक जड़ वस्तु का जैसा आकार तथा रंग होता है, वैसा ही विचारों का भी आकार और रंग होता है, परन्तु विचार सूक्ष्म है, इससे उनका आकार और रंग इन बाहरी नेत्रों से नहीं दिखाई देता। केवल जिनको अंतर-दृष्टि है, उन्हीं को दिखाई देता है।

जब हम विचार करते हैं, तब वायु में आकार और रंग उत्पन्न होते हैं। उन विचारों को हमारे स्थूल नेत्र नहीं देख सकते। पेरिस के डाक्टर बेरडुक ने, विचारों से वायु में जो चित्र बनते हैं, उनके फोटो लिये हैं।

एक लड़की अपने पाले हुए पक्षी की मृत्यु पर विलाप कर रही थी। उस समय उसकी तसवीर ली गई, तो मृत पक्षी का फोटो पिंजड़े सहित प्लेट पर आ गया।

एक स्त्री अपने बच्चे के शोक में तल्लीन हुई बैठी थी, उसका फोटो लिया, तो मरे बच्चे का चित्र प्लेट पर उतर आया।

एक सिपाही अपने मन में गरुड़ पक्षी का चिंतन कर रहा था, उसका फोटो लिया गया, तो प्लेट पर सुन्दर पक्षी का आकार प्रकट हो गया।

ये मानसिक चित्र एकत्रित विचारों से बनते हैं। इससे यह सिद्ध हो चुका है कि जैसे बिजली के द्वारा बेतार के तार से खबर दी जाती है, वैसे ही हम अपने मित्र को अपने मानसिक संदेश—

वह चाहे जितनी दूर हो—बिना किसी यन्त्र के दे सकते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि विचार-शक्ति अथवा इच्छा-शक्ति भी लोह-चुम्बक के समान प्रभाववाली शक्ति है।

विचारों का असर केवल फोटो के प्लेट पर ही चित्र बनाना मात्र नहीं है, किन्तु विज्ञान से यह भी ज्ञात हुआ है कि विचार के समय मस्तिष्क में विद्युत् उत्पन्न होती है और उसका असर भी मिकनातीसी सुई द्वारा नापा गया है। जहाँ बिजली होती है, वहाँ आकाश के परमाणुओं में कम्पन होता है। इससे संकल्प-द्वारा प्रत्येक मनुष्य आकाश में परमाणुओं की गति को बल देता है। परमाणुओं की गति पलटने से आकाश में रूप बनते हैं। इन रूपों को संकल्प-रूप कहते हैं। ये रूप आकाश के परमाणुओं से बनने के कारण चर्मचक्षु-द्वारा दिखाई नहीं देते। जैसा संकल्प होता है, उसका वैसा ही रूप होता है और उसी के अनुसार रूप का रंग भी होता है। आकाश में संकल्प-द्वारा नाना प्रकार के रूप बनते हैं, इन रूपों की बाह्य रेखा कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट होती है। संकल्प में जितनी तीव्रता अधिक होगी, उतनी ही स्पष्ट रेखा भी उसकी होगी। यदि संकल्प दृढ़ निश्चय युक्त होगा, तो उसका रूप भी एक विशेष आकार धारण करेगा। यदि मन में कोई लक्ष्य निश्चित न हुआ, तो संकल्प आकाश में कंपन तो उत्पन्न करेगा, किन्तु उसका रूप स्पष्ट न बनेगा।

प्रेममय भाव से उत्पन्न हुए संकल्पों से सुन्दर फूलों के आकार बनते हैं और भक्ति-भाव से तथा ईश्वराराधन से गुंबद की नाईं कमलाकार रूप बनते हैं। क्रोध और हिंसा के संकल्प से छुरा और बरछी के आकार बनते हैं और आकाश का प्रवाह इन रूपों

को धारण कर ध्येय पुरुष की ओर जाता और उसकी मानसिक उपाधि पर अपना प्रभाव डालता है। सकल्प के नाना प्रकार के चित्र उसके तेजोमय आकाश में बनते हैं, जो कि प्रत्येक मनुष्य के चारों ओर दो-दो फीट तक फैले रहते हैं।

इन विचारों की पुष्टता और लघुता के अनुसार रंग और आकार, पक्के कच्चे और अधूरे भी होते हैं तथा न्यूनाधिक समय तक टिकते हैं, अर्थात्—यदि कोई विचार बारबार और लक्ष्य-पूर्वक किया हुआ हो, तो उसका आकार बहुत अच्छा और पूरा होता है, तथा उसका रग भी पक्का होता है। इससे वह विचार भी बहुत दिनों तक रहता है, परन्तु जो विचार ऊपर-ही-ऊपर किया होता है, तथा थोडे काल किया गया है, उसका रंग कच्चा होता है। इससे वह थोडे ही काल तक रहता है, पीछे मिट जाता है।

जैसे भक्ति विषयक विचार का रग आकाशवत् आसमानी है, उसका आकार विविध पुष्पों, सुन्दर बेलों का-सा होता है, जिस प्रकार की भक्ति हो, उसी प्रकार के पुष्पों का-सा आकार होता है। जैसे कमल का फूल, बेला का फूल, चमेली या धतूरा आदि के फूल का-सा आकार भक्ति के विचारों का भी होता है। ऐसे हो यदि किसी कामोद्वेग से विचार की उत्पत्ति हुई हो, तो उसके रूप में लाल रग अधिक होगा, क्योंकि कामोद्वेग से सारे शरीर का रक्त क्षुभित होकर एक प्रकार की सनसनी शरीर में छा जाती है। इससे उन विचारों का रग भी लाल होना अवश्यभावी है। यदि तर्क वितर्क युक्ति विचार है, तो उसमें पीला रग अधिक होगा।

प्रेम और भक्तियुक्त विचार होने पर उसका रग गुलाबी-

वह चाहे जितनी दूर हो—बिना किसी यन्त्र के दे सकते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि विचार-शक्ति अथवा इच्छा-शक्ति भी लोह-चुम्बक के समान प्रभाववाली शक्ति है।

विचारों का असर केवल फोटो के प्लेट पर ही चित्र बनाना मात्र नहीं है, किन्तु विज्ञान से यह भी ज्ञात हुआ है कि विचार के समय मस्तिष्क में विद्युत् उत्पन्न होती है और उसका असर भी मिकनातीसी सुई द्वारा नापा गया है। जहाँ बिजली होती है, वहाँ आकाश के परमाणुओं में कम्पन होता है। इससे सङ्कल्प-द्वारा प्रत्येक मनुष्य आकाश में परमाणुओं की गति को बदल देता है। परमाणुओं की गति पलटने से आकाश में रूप बनते हैं। इन रूपों को सङ्कल्प-रूप कहते हैं। ये रूप आकाश के परमाणुओं से बनने के कारण चर्मचक्षु-द्वारा दिखाई नहीं देते। जैसा सङ्कल्प होता है, उसका वैसा ही रूप होता है और उसी के अनुसार रूप का रंग भी होता है। आकाश में सङ्कल्प-द्वारा नाना प्रकार के रूप बनते हैं, इन रूपों की बाह्य रेखा कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट होती है। सङ्कल्प में जितनी तीव्रता अधिक होगी, उतनी ही स्पष्ट रेखा भी उसकी होगी। यदि सङ्कल्प दृढ़ निश्चय युक्त होगा, तो उसका रूप भी एक विशेष आकार धारण करेगा। यदि मन में कोई लक्ष्य निश्चित न हुआ, तो सङ्कल्प आकाश में कंपन तो उत्पन्न करेगा, किन्तु उसका रूप स्पष्ट न बनेगा।

प्रेममय भाव से उत्पन्न हुए सङ्कल्पों से सुन्दर फूलों के आकार बनते हैं और भक्ति-भाव से तथा ईश्वराराधन से गुंबद की नाईं कमलाकार रूप बनते हैं। क्रोध और हिंसा के सङ्कल्प से छुरा और बरछी के आकार बनते हैं और आकाश का प्रवाह इन रूपों

को धारण कर ध्येय पुरुष की ओर जाता और उसकी मानसिक उपाधि पर अपना प्रभाव डालता है। सकल्प के नाना प्रकार के चित्र उसके तेजोमय आकाश में बनते हैं, जो कि प्रत्येक मनुष्य के चारों ओर दो-दो फीट तक फैले रहते हैं।

इन विचारों की पुष्टता और लघुता के अनुसार रग और आकार, पक्के कच्चे और अधूरे भी होते हैं तथा न्यूनाधिक समय तक टिकते हैं, अर्थात्—यदि कोई विचार बारबार और लक्ष्य-पूर्वक किया हुआ हो, तो उसका आकार बहुत अच्छा और पूरा होता है, तथा उसका रग भी पक्का होता है। इससे वह विचार भी बहुत दिनों तक रहता है, परन्तु जो विचार ऊपर-ही-ऊपर किया होता है, तथा थोडे काल किया गया है, उसका रँग कच्चा होता है। इससे वह थोडे ही काल तक रहता है, पीछे मिट जाता है।

जैसे भक्ति विषयक विचार का रग आकाशवत् आसमानी है, उसका आकार विविध पुष्पों, सुन्दर बेलों का-सा होता है, जिस प्रकार की भक्ति हो, उसी प्रकार के पुष्पों का-सा आकार होता है। जैसे कमल का फूल, बेला का फूल, चमेली या धतूरा आदि के फूल का-सा आकार भक्ति के विचारों का भी होता है। ऐसे ही यदि किसी कामोद्वेग से विचार की उत्पत्ति हुई हो, तो उसके रूप में लाल रग अधिक होगा, क्योंकि कामोद्वेग से सारे शरीर का रक्त क्षुभित होकर एक प्रकार की सनसनी शरीर में छा जाती है। इससे उन विचारों का रग भी लाल होना अवश्यंभावी है। यदि तर्क-वितर्क युक्ति विचार है, तो उसमें पीला रग अधिक होगा।

प्रेम और भक्तियुक्त विचार होने पर उसका रंग गुलाबी-

सा होगा। यदि विचारों में स्वार्थपरता अधिक होगी, तो उसका हरा रंग प्रधान होता है। यदि संकल्प क्रोधयुक्त हो, तो उस का रंग लाल और काला मिला होता है। वह क्रोधी मनुष्य के तेज से निकलकर आकाश-मार्ग से उस मनुष्य की ओर जाता है, जिस पर क्रोध किया गया है। उससे उसे हानि पहुँचती है। इस प्रकार, जैसे विचारों में जैसी भावना होती है, वैसा ही रंग उस रूप में आ जाता है।

शास्त्रों में पूजा-पाठ, कर्मकांड, उपासना आदि की मर्यादा बाँधी गई है, वह भी इसी नियम के अनुसार है।

मंत्र-शास्त्र में देवताओं के रूप, वर्ण, छंद, ऋषि आदि भिन्न भिन्न वर्णन किये हैं, और उनके सिद्धांतानुसार मंत्र सिद्धि के लिए मंत्रों के छंद ऋषि, देवता, वर्ण और रूप का ध्यान तथा विनियोग भी जप से पूर्व करना अत्यंत आवश्यकीय है, परन्तु हम लोग अपनी मूर्खतावश उक्त ध्यानादि को गोरखधंदा और मिथ्या कल्पना कह दिया करते हैं।

जो संकल्प एक बार मन में आकर चला जाता है, उसका रूप बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है, परन्तु स्थिर संकल्प मन में दीर्घ काल तक बना रहता है और बारबार चिंतन करने से दृढ़ हो जाता है। ये सब बातें कोरी कल्पना-मात्र या निर्बल चित्त के भ्रम नहीं हैं, किन्तु अनुभवसिद्ध हैं। आजकल के अमेरिकादि पश्चिम देश-निवासियों ने विचारों को आकार के फोटो लिये हैं, और विचारों के रंगों के विषय में बहुत कुछ सिद्ध करके पुस्तकों में वर्णन भी किया है। विस्तार-भय से यहाँ केवल दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है।

अच्छे विचारों के रंग बहुत सुन्दर और प्रकाशमान् होते हैं, जैसे रेडियम का प्रत्येक परमाणु सदैव प्रकाशमान् रहता है और उसमें से सदा तेज निकला करता है, वैसे ही विचार के प्रत्येक परमाणु के चारों ओर एक प्रकार का स्वाभाविक तेज तथा रंग होता है। इससे बहुत से परमाणु मिलकर बहुत प्रकाशमान् और सुन्दर प्रतीत होते हैं। ये अपने प्रकाश के अनुसार हम पर प्रभाव डालते हैं। इससे जब कोई नवीन विचार मन में आता है, तब हमारे हृदय में एक प्रकार का उजेला सा हो जाता है। उस प्रकाश की गरमी हमारे मस्तिष्क में पहुँच जाती है। जैसे बिजली से हमारे शरीर में सनसनाहट आ जाती है, वैसे ही नये विचार के प्रकाश से हममें कोई नई चेतनता आ जाती है। यह सब विचारों के प्रभाव से ही होता है। विचारों के परमाणु प्रकाशमान् हैं, इससे योगी तथा मानसिक शक्तिवाले मनुष्य विचारों को असली रूप-रंग सहित देख और समझ सकते हैं।

अच्छे विचार और बुरे विचार अपनी जाति के अनुसार अपनी ओर खींचते हैं

एक जाति के पदार्थ अपनी जातिवाले पदार्थों को खींचते और परस्पर मिल जाते हैं। जैसे एक देश का तेल दूसरे देश के तेल में बिना परिश्रम के मिल जाता है और पानी में पानी मिल जाता है, वैसे ही अच्छे विचार अपनी जातिवाले से अच्छे विचारों में मिल जाते हैं और दूसरे से अपनी ओर खींच भी लेते हैं। इससे छोटा-सा विचार भी आगे जाकर बहुत बलवान् हो जाता है। इसी प्रकार बुरे विचार अपनी ओर बुरे विचारों को खींचकर उनमें मिल जाते हैं, परन्तु बुरे विचार अच्छे विचारों में नहीं मिलते तथा अच्छे विचार बुरे विचारों में नहीं मिलते। जैसे पतिव्रता और वेश्या की मित्रता नहीं होती, वैसे अच्छे विचारों का बुरे विचारों के साथ सम्मिलन नहीं होता, क्योंकि पतिव्रता को वेश्या का संग नहीं रुचता और वेश्या को पतिव्रता का संग नहीं रुचता। वैसे ही अच्छे और बुरे विचारों के विषय में भी जानना चाहिए। इससे यदि हम अच्छे विचार करेंगे, तो हमारे पास अच्छे विचार आवेंगे, और बुरे विचार करेंगे, तो बुरे विचार हमारे पास आवेंगे।

हमारे मन में विचारों को खींचने की स्वाभाविक शक्ति है। जैसे पृथ्वी में जड़ पदार्थों को अपनी ओर खींचने की स्वाभाविक शक्ति है, वैसे ही मन को भी विचारों को खींचने में विशेष परि-

श्रम नहीं पड़ता। जैसे चुबक के पास लोहा स्वतः खिंच आता है, वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण में अच्छे विचार और मलिन अन्तःकरण में बुरे विचार आप से आप खिंच आते हैं यह अन्तःकरण का स्वभाव है। इससे हमको उसमें विशेष परिश्रम नहीं पड़ता, किंतु उसके नियमों को जानकर अपना चरित्र शुद्ध करना चाहिए।

जैसे हमारे विचार होते हैं, दूसरों के वैसे ही विचारों को हम अपनी ओर खींचते हैं और दोनों एक समान विचारवाले हो जाते हैं और उनका परस्पर प्रेम हो जाता है, क्योंकि समान धर्म-स्वभाववालों में परस्पर एकता होती है। इस रीति से सब जगत् ही नहीं, स्वर्ग के विचार भी हमारे पास आ सकते हैं, तब अपने विचार दूसरों को देना कौन कठिन है। हम तो स्वर्ग में रहनेवाले देवताओं के मन में भी अपने विचार पहुँचा सकते हैं। इससे विचारों को खींचने की जो मन में अनमोल शक्ति है, उससे लाभ उठाने का उद्योग हमें अवश्य करना चाहिए।

हमारे मन में बहुत दूर के विचार खींचने की सामर्थ्य है। केवल इतना ही नहीं, किंतु दूरबीन की नाईं बहुत दूरस्थ वस्तु के देखने की सामर्थ्य भी हमारे मन में है। इसी शक्ति के बल से कितने ही महात्मा अपने कुटी में बैठे बैठे ब्रह्मांड की जानने योग्य सब बातों को जान सकते और अपने विचारों को अन्यत्र भेज सकते हैं। वही शक्ति हम सब के भीतर है, परन्तु दुर्वासना के कारण मन मलीन होने से वह शक्ति विकसित नहीं होती, इससे जैसे बने वैसे अपने मन को शुद्ध करके उन शक्तियों को विकसित करना चाहिए। जैसे फोनोग्राफ बाहर के शब्द को ग्रहण कर लेता है और बाहर निकाल भी सकता है, वैसे ही मन में भी दूसरों के विचार ग्रहण

यदि तुम अच्छे विचार करोगे, तो ससार में सब ओर से अच्छे विचार तुम्हारे पास आप-ही-आप आने लगेंगे, इससे प्रथम अपने मन पर अधिकार जमाओ। तब तुम जैसा बनना चाहोगे, वैसे हो जाओगे। अपने मन को वश में किये बिना पूर्ण शक्ति और स्थिर शांति प्राप्त करने का दूसरा उपाय नहीं है।

अच्छे विचार सूक्ष्म परमाणुओं से बने होने के कारण ऊपर रहते हैं, इससे उनको खींचने में परिश्रम पड़ता है और बुरे विचार जड़ता वाले होते हैं, इससे नीचे रहते हैं और सहज में मिल जाते हैं। विचारों के भी रूप और आकार होते हैं। आकारवाली तथा रूपवाली वस्तु चाहे जितनी सूक्ष्म हो, उसमें कुछ वजन अवश्य होता है और जो वजनवाली वस्तु होती है, वह नीचे रहती है और हलकी वस्तु ऊपर रहती है, अर्थात्— रोग वर्द्धक वायु नीचे रहती है और आरोग्य-वर्द्धक वायु ऊपर आकाश में रहती है। अनुभवी लोग कहते हैं कि जैसे अच्छा निर्मल जल समुद्र के ऊपर रहता है और खराब जल नीचे तली में रहता है, वैसे ही उत्तम विचार सूक्ष्म होने से ऊपर रहते हैं और नीच विचार, हीन होने से नीचे रहते हैं। इसलिए, जो बुरे विचार करते हैं, उनको बुरे विचारों से तत्काल सहायता मिलती हैं, क्योंकि बुरे विचार जड़तावाले होने और नीचे अथवा हमारे आसपास रहने से बिना परिश्रम के शीघ्र ही मिल जाते हैं और अच्छे विचार सूक्ष्म होने से ऊपर बहुत दूर रहते हैं, इससे सहज में नहीं मिलते। जब हम परिश्रम करें और उसमें लगे रहें तभी वे मिलते हैं, इससे यदि हम बुरे विचार करेंगे, तो बुरे विचार बिना परिश्रम और बिना बुलाये आप-ही-आप दौड़

आवेंगे। इस प्रकार जितने बुरे विचार हम करेंगे, उससे अधिक हमारी हानि होगी। इसलिए सदा यह लक्ष्य रखना चाहिए कि एक भी बुरा विचार मन में न उत्पन्न होने पावे। आकाश तत्व में पड़े हुए दूसरों के भले-बुरे विचार अपनी ओर खींचने की रीति यह है कि हम भले विचार करेंगे, तो भले विचार हमारे पास आवेंगे और बुरे विचार करेंगे, तो बुरे विचार हमारे पास शीघ्रता से आवेंगे। इससे सदा अच्छे विचार करना चाहिए। प्रकृति का नियम है कि सूक्ष्म वस्तु सूक्ष्म की ओर खींचती है और जड़ वस्तु जड़ की ओर। पवित्र की ओर पवित्र और पापी की ओर पापी खिंचता है। यदि उच्च श्रेणी के सूक्ष्म विचारों को अपनी ओर खींचना हो, तो अपने मन को प्रथम सूक्ष्म ग्राही बनाना चाहिए, क्योंकि जब मन सूक्ष्म प्रभाव ग्रहण करने योग्य होता है, तभी सूक्ष्म विचारों को पकड़ सकता है। जैसे बेतार के तार भेजने की कल एक स्थान पर हो और दूसरे स्थान पर वैसे ही दूसरी कल रक्खी हो, तो वे एक दूसरे का प्रभाव सहज में ग्रहण कर सकती हैं, परन्तु यदि एक ओर की कल बिगड़ी हो, तो दूसरी जगह से आया हुआ संदेश नहीं ले सकती है। इसी प्रकार आकाश तत्त्व में गुप्त रूप से असंख्य भले विचार भरे हुए हैं, उनकी कल तो साफ ही है, परन्तु हमारी मनरूपी कल वैसी साफ नहीं होती, इसी से ऊपर की कल से आया हुआ संदेश-रूपी तार भीतर नहीं ले सकती। अतः मन-रूपी कल को हमें सर्वप्रथम साफ करना चाहिए। इसके लिए हमें सात्विक आहार और पवित्रता तथा शुद्ध आचरण, सत्यता और सत्य भाषणादि का अभ्यास होना चाहिए।

पूर्ण विश्वास करना कार्य सिद्धि करने के ही समान है ।

एक विद्वान् का कथन है कि प्रबल कामना असभव को भी सभव कर डालती है । उत्साह तथा हौसला इस बात की भविष्यद्वाणी है कि वह मनुष्य कहाँ तक कार्य कर सकता है, इसलिए हे सज्जनो, वीरता और धैर्य से सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं । इसलिए पुरुषार्थ करो, तो शीघ्र सफलता प्राप्त होगी । करके देखो ।

विचार-शक्ति

पहले यह जान लेना चाहिए कि विचारों में कितनी शक्ति है। भय के विचारों से एक ही रात में बाल सफेद हो जाते हैं।

दूसरा—किसी अपराधी को प्राणदंड दिया गया था। उससे डॉक्टर ने कहा कि हम यह परीक्षा करना चाहते हैं कि मनुष्य के शरीर से कितना रक्त निकल जाने पर भी वह जीवित रह सकता है। इसके बाद उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर अँधेरी कोठरी में उसपर प्रयोग किया गया। यद्यपि उसके शरीर से बहुत थोड़ा रक्त निकाला गया था, परन्तु डॉक्टर ने उसे ऐसा प्रतीत कराया कि शरीर से बहुत सा रक्त निकल गया है, इसी भय के कारण सवेरा होते होते वह मर गया। इन दोनों दृष्टांतों से विचारों की शक्ति समझ में आ सकती है।

विचार-शक्ति की परीक्षा करने के लिए डॉक्टर बेरडुक ने एक यंत्र तैयार किया है। एक काँच के पात्र में सुई के सदृश एक महीन तार लगाया है और मन को एकाग्र करके थोड़ी देर तक विचार-शक्ति का प्रभाव उसपर डालने से सुई हिलने लगती है। यदि इच्छा शक्ति निर्बल हो, तो उसमें कुछ भी हलचल नहीं होती। विचार-शक्ति की गति बिजली से भी तीव्र है। पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक एक सेकेंड के १६ वें भाग में १२००० मील तक विचार जा सकता है।

उन्नति के मार्ग में वृद्धि को प्राप्त हो, उन्हीं विचारों को सदा अपने मन में लाना चाहिए।

विचार वास्तव में शक्तिमान् और प्रभावशाली होते हैं। हमारे प्रत्येक विचार में अच्छा या बुरा प्रभाव होता है। यदि हम किसी से घृणा करते हैं, तो हम अपने शरीर से एक प्रकार का विष निकालते हैं, जो हमारे चारों ओर फैल जाता है, तथा समीपवर्त्ती प्राणियों को हानि पहुँचाता है। ऐसे ही जब हम किसी से प्रेम करते हैं, तो उसके प्रति कृपा और सहायता के विचार भेजते हैं, जो उसके चारों ओर फैलकर उसे सहायता और शांति प्रदान करते हैं।

शक्ति उसे कहते हैं, जो दूसरों को गति प्रदान करे। दूसरों को चलावे, वह विचार-शक्ति है। वही सारे संसार को चला रही है। ऐसे विचार जहाँ से उत्पन्न होते हैं, वह मन है और जिस यंत्र द्वारा मन से विचार निकाला जाता है, वह मस्तिष्क है। विचारों को कोई देख नहीं सकता और न किसी ने आज तक देखा है, परन्तु विचार की इस अद्भुत शक्ति को सबने स्वीकार किया है कि ये विचार रचना करते हैं, भेद करते हैं, बनाते हैं और नाश भी करते हैं।

यूरोप और अमेरिका के विद्वान् डॉक्टर यह सिद्ध करते जाते हैं कि मनःशक्ति, अर्थात्—विचार-शक्ति औषधि की अपेक्षा अधिक बलवान् है। जिन रोगों में बड़े बड़े डॉक्टर, वैद्य, हकीम हाथ टेक देते हैं, उनमें मनःशक्ति अपना चमत्कारिक प्रभाव दिखाती है और रोगी को बल-पूर्वक मृत्यु-मुख से छुड़ाकर विस्मय में डाल देती है। बड़े-से-बड़े रोगों को भी मन शीघ्र अच्छा कर

देता है। इससे जीवित मनुष्य का मन बहुत सामर्थ्यवान् है, इसी कारण मन से कहो कि हमारा यह रोग शीघ्र दूर हो जाय। यदि विश्वास पूर्वक कहोगे, तो अवश्य दूर हो जायगा। यद्यपि इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है, परन्तु धीरे-धीरे पड़ता है, अत इससे लाभ होने में देर लगे, तो निराश नहीं होना चाहिए, किन्तु नित्य उठते बैठते, सोते-जागते यही भावना करो कि हमारा रोग दूर हो जाय। यह भावना या इच्छा ही रोग को मिटा देगी। योग-चिकित्सा में लिखा है कि शरीर यत्र है, तुम उसे मन से जैसा बनाना चाहोगे, वैसा ही वह बन जायगा।

विचारों में रचना करने की शक्ति है, इससे मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, वैसे ही उसकी उन्नति या अवनति होती है। जैसे जिस विद्यार्थी का मन सदा उत्साह-पूर्ण होता है और जिसके मन में सदा बड़ा होने की लालसा रहती है, और जो बड़ा लेखक, बड़ा वक्ता या बड़ा अधिकारी होना चाहता है, तथा जिसका मन सदा बड़ी वस्तुओं की रचना किया करता है, वह वास्तव में बड़ा हो जाता है।

एक विद्वान् का कथन है कि जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है, परन्तु मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, ऐसा कहने मात्र से ही कार्य सिद्धि नहीं होती, किन्तु जो उस कथन के अनुसार सदा विचार करता है और पूर्ण विश्वास रखता है, वह वैसा ही बन जाता है, क्योंकि रचना करने की सामर्थ्य उन्हीं विचारों में होती है। जैसे किसी लड़के के मन में सदा नौकरी करने के विचार होते हैं, तो वह आगे नौकरी ही करता है और जिसके मन में किसी उच्च कार्य करने के विचार होते हैं, तो वह अपने जीवन में

अवश्य कोई उच्च कार्य ही करता है, एवं अनेक मनुष्यों का स्वामित्व सम्पादन करता है।

अध्यात्मशास्त्र का यह अटल नियम है कि यदि एक ही प्रकार के विचार बुद्धि में अधिक काल तक रहेंगे, तो उस मनुष्य की बुद्धि उसी के अनुरूप हो जायगी और वह वैसे ही कार्य करने लगेगा। मनुष्य से बहुत भले बुरे कार्य इसी प्रकार से होते हैं। संयोगवश कोई बुरा विचार उसके मन में आ जाता है, तब उसपर एकाग्रता-पूर्वक मनन करने से बिना जाने उस विचार के साथ उसका संग हो जाता है और उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है और विवश होकर वह उसी विचार के अधीन हो जाता और बुरा कर्म करता है, परन्तु इसी तत्व को जानकर यदि मनुष्य अच्छे विचारों का उपयोग करे, तो जीवन जैसा चाहे वैसा बना सकता है। मनुष्य स्थूल सृष्टि में परतन्त्र होने पर भी, आतंरिक सृष्टि में पूर्ण स्वतन्त्र है। वह चाहे जैसा विचार करने के लिए स्वतंत्र है। मन हमारा दास है, इससे उसे हमारे ही अधीन वर्तना चाहिए। यदि वह हमारे वश में न हो, तो उसे वश में लाना चाहिए। उसका उपाय यह है कि प्रथमतः मन का स्वभाव कैसा है, और वह कैसे काम करता है, यह विचारना चाहिए। मन को जैसी बात सिखाई जायगी, वैसी ही वह सीख जायगा। शीघ्र ही या विलम्ब से, परन्तु सीख अवश्य जायगा। इसमें किंचित् मात्र संदेह नहीं। एक बार अभ्यास में लगाने पर उसने जैसा सीखा है, वैसा ही वह करता है। उसे वश में करने में यदि पहले पहल ... न हो, तो भी निराश नहीं होना चाहिए। कालांतर में अभ्यास की दृढ़ता से वह तुम्हारे कथनानुसार काम करने लगेगा।

जैसे विचार तुम करना चाहोगे, मन वैसे ही विचार करने लगेगा; परन्तु बुरे विचारों से जब मन को हटाना हो, तब बुरे विचारों के साथ मन का संग न होने देना चाहिए। जब बुरे विचारों से दूर रहने की इच्छा हो, तब बुरे भाव को किसी रूप से मन में न आने दो और उस ओर किंचित् लक्ष्य न दो। जिस समय कोई अशुभ विचार आवे, तो तत्काल किसी अच्छे विचार की ओर या किसी आत्म संयम की ओर या आत्म-संयमी महात्मा की ओर अथवा ईश्वर चिन्तन में मन को लगा देना चाहिए। इस रीति से बुरे विचारों को रोका जा सकता है। फिर जब कभी वैसा विचार आवेगा, तब उससे सहज में बच सकोगे। ऐसे सब असद्विचार दूर किये जा सकते हैं और उनको शुद्ध और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस रीति को समझकर काम में लाया जाय, तो यह मनुष्य क्रम-क्रम से प्रत्येक उच्च आदर्श के अनुसार उन्नति कर सकता है।

इस कार्य की सिद्धि के अर्थ दो बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। उनमें एक है आदर्श पर ध्यान और दूसरी आदर्श के विरुद्ध कार्य न करना। क्षण भंगुर सुखों पर दृष्टि न डालकर अपने आदर्श के विरुद्ध कभी नहीं चलना चाहिए। कहा भी है—'हठ न छूटे छूटे यह देह'। इससे प्रारंभिक कार्य से निराश नहीं होना चाहिए।

स्वभाव को बदलना सहज बात नहीं है, जो शीघ्र ही बदल जाय; किन्तु इसमें समय की आवश्यकता है। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, वैसे वैसे शक्ति भी बढ़ती जायगी। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? कठिन-से-कठिन कार्य भी दृढ और लगा-

अवश्य कोई उच्च कार्य ही करता है, एवं अनेक मनुष्यों का स्वामित्व सम्पादन करता है।

अध्यात्मशास्त्र का यह अटल नियम है कि यदि एक ही प्रकार के विचार बुद्धि में अधिक काल तक रहेंगे, तो उस मनुष्य की बुद्धि उसी के अनुरूप हो जायगी और वह वैसे ही कार्य करने लगेगा। मनुष्य से बहुत भले बुरे कार्य इसी प्रकार से होते हैं। सयोगवश कोई बुरा विचार उसके मन में आ जाता है, तब उसपर एकाग्रता-पूर्वक मनन करने से बिना जाने उस विचार के साथ उसका सग हो जाता है और उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है और विवश होकर वह उसी विचार के अधीन हो जाता और बुरा कर्म करता है, परन्तु इसी तत्व को जानकर यदि मनुष्य अच्छे विचारों का उपयोग करे, तो जीवन जैसा चाहे वैसा बना सकता है। मनुष्य स्थूल सृष्टि में परतन्त्र होने पर भी, आंतरिक सृष्टि में पूर्ण स्वतन्त्र है। वह चाहे जैसा विचार करने के लिए स्वतन्त्र है। मन हमारा दास है, इससे उसे हमारे ही अधीन बर्तना चाहिए। यदि वह हमारे वश में न हो, तो उसे वश में लाना चाहिए। उसका उपाय यह है कि प्रथमतः मन का स्वभाव कैसा है, और वह कैसे काम करता है, यह विचारना चाहिए। मन को जैसी बात सिखाई जायगी, वैसी ही वह सीख जायगा। शीघ्र हो या विलम्ब से, परन्तु सीख अवश्य जायगा। इसमें किंचित् मात्र सदेह नहीं। एक बार अभ्यास में लगाने पर उसने जैसा सीखा है, वैसा ही वह करता है। उसे वश में करने में यदि पहले पहल सफलता न हो, तो भी निराश नहीं होना चाहिए। कालांतर में अभ्यास की दृढ़ता से वह तुम्हारे कथनानुसार काम करने लगेगा।

जैसे विचार तुम करना चाहोगे, मन वैसे ही विचार करने लगेगा, परन्तु बुरे विचारों से जब मन को हटाना हो, तब बुरे विचारों के साथ मन का संग न होने देना चाहिए। जब बुरे विचारों से दूर रहने की इच्छा हो, तब बुरे भाव को किसी रूप से मन में न आने दो और उस ओर किंचित् लक्ष्य न दो। जिस समय कोई अशुभ विचार आवे, तो तत्काल किसी अच्छे विचार की ओर या किसी आत्म-संयम की ओर या आत्म-संयमी महात्मा की ओर अथवा ईश्वर चिन्तन में मन को लगा देना चाहिए। इस रीति से बुरे विचारों को रोका जा सकता है। फिर जब कभी वैसा विचार आवेगा, तब उससे सहज में बच सकोगे। ऐसे सब असद्विचार दूर किये जा सकते हैं और उनको शुद्ध और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस रीति को समझकर काम में लाया जाय, तो वह मनुष्य क्रम-क्रम से प्रत्येक उच्च आदर्श के अनुसार उन्नति कर सकता है।

इस कार्य की सिद्धि के अर्थ दो बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। उनमें एक है आदर्श पर ध्यान और दूसरी आदर्श के विरुद्ध कार्य न करना। क्षण भंगुर सुखों पर दृष्टि न डालकर अपने आदर्श के विरुद्ध कभी नहीं चलना चाहिए। कहा भी है—'हठ न छूटे छूटे बरु देहा'। इससे प्रारंभिक कार्य से निराश नहीं होना चाहिए।

स्वभाव को बदलना सहज बात नहीं है, जो शीघ्र ही बदल जाय, किन्तु इसमें समय की आवश्यकता है। जैसे जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, वैसे वैसे शक्ति भी बढ़ती जायगी। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? कठिन-से-कठिन कार्य भी दृढ़ और लगा-

तार अभ्यास से अवश्य सिद्ध हो जाता है, इसमें किंचित् सदेह नहीं करना चाहिए।

विचारों में शक्ति एकाग्रता से उत्पन्न होती है। प्रत्येक मनु के आसपास आकाश में भले-बुरे विचार मँडराते रहते हैं का मन अशिक्षित है, वे बुरे विचारों को अपनी ओर खींचते और उसका परिणाम भय, शोक, चिन्ता, उद्वेग आदि होते हैं वास्तव में मन को स्वतंत्र छुट्टा छोड़ देने से मनुष्य का जि अनिष्ट होता है, उतना और किसी कारण से नहीं होता।

बाजार में जाकर देखो, तो मनुष्यों के मुँह पर उनके अवस्था स्पष्ट देखने में आवेगी। किसी का मुख चिंता से है, तो किसी का भय से उद्विग्न और किसी का शोक से प्रतीत होगा। ये सब कारण अपने आंतरिक विचारों के ही हैं विचारों की शक्ति समझ लेने से मनुष्य चाहे जैसी उन्न कर सकता है। मनुष्य की परिस्थिति और मित्र शत्रु का कारण कुछ नहीं, केवल अपने निज के विचार ही हैं। विचार सुख और बुरे विचार दुःख देनेवाले होते हैं। करने की इच्छा में ही महान् शक्ति भरी होती है, शक्ति अनजान में गुप्तरूप से अपना कार्य करती है। उसी मौन शक्ति भी कहते हैं। दो मनुष्य परस्पर के संसार में यात्रा करते हैं और कहीं-कहीं दो मनुष्यों में उत्पन्न हो जाता है। यह सब उसी मौन-शक्ति का कारण

विचारों को कभी निष्फल मत समझो। सभी कुछ न-कुछ फल अवश्य उत्पन्न करते हैं। इसमें अपने को सदा सावधानी से देखते रहा करो, कि वे उत्तम और

[ये] फल उत्पन्न करनेवाले हैं। इससे बढ़कर आनन्द का [सा]धन कोई दूसरा नहीं है। अदृष्ट सहायता सब काल में सब [ज]गह सबके लिए सदा तैयार है, उसे प्राप्त करने के लिए [जि]स योग्यता की आवश्यकता है, उसे समझकर उसको प्राप्ति [क]ा अभ्यास करो, तो फिर सब वस्तुएँ तुम अपनी इच्छानुसार [अव]श्य प्राप्त कर सकोगे।

[ए]क विद्वान् का कथन है कि विचार जितने शक्तिमान् [सि]द्ध होते हैं, उतनी संसार में कोई वस्तु शक्तिशाली सिद्ध [न]हीं होती। जो मनुष्य के हितकारी विषयों पर उचित रीति से [वि]चार कर सकते हैं, वे किसी-न-किसी दिन अवश्य संसार [क]ा महान् उपकार करके सफल मनोरथ होंगे। हम जो कुछ [वि]चार करते हैं, उसका हमें सदा ध्यान रखना चाहिए। हम [वा]यु को देख नहीं सकते, किन्तु जानते हैं कि वायु है। सूर्य [क]ी किरणों से सरोवर का जल भाफ रूप से आकाश की ओर [ज]ाता है, हम उसे देख नहीं सकते। ऐसे ही विचार भी एक [व]स्तु है, जिसे हम स्थूल नेत्रों से देख नहीं सकते। वायु और [ज]ल की लहरों के समान विचारों की भी लहरें होती हैं। जैसे [ह]मारे विचार होंगे, वैसे ही विचारों को हम अपनी ओर आकर्षित [क]रेंगे। यदि हम विचारों को स्थूल नेत्रों से देख सकते, तो [ह]में एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य की ओर जाते हुए अगणित [वि]चारों की तरंगें दिखाई देतीं और यह भी ज्ञात होता कि एक [स]ज्जन परोपकारी पुरुष की विचार-तरंगें, अन्य किसी ऐसी [प्र]कृति के मनुष्यों से सर्वथा मिलती जुलती हैं। ऐसे ही निराश [औ]र क्रोधयुक्त मनुष्यों की विचार तरंगें भी सर्वथा समान होती

हैं। वायु में जाकर ये समान तरगें परस्पर मिल जाती है इससे जिसके शरीर में जैसी विचार-शक्ति की तरगें उठती वैसी ही तरगों को सहायता पहुँचाती हैं और धनाती हैं।

यह सत्य है कि विचार करनेकी शक्ति सब मनुष्यों होती है, परन्तु सब अवसरों पर और सब स्थान में सर्वत्र उस शक्ति को काम में नहीं लाते। बहुत लोग मोटी बातों भी अपनी विचार-शक्ति को काम में नहीं लाते, या सकते। राजनैतिक सभाओं की बिना बात को उत्तेजना भी यहाँ बताती है कि उपस्थित श्राता भावना ही करके रह जाते हैं। उससे आगे बढकर विचार-शक्ति-द्वारा वे अपनी भावनाओं को विचार में परिणत करने का कष्ट नहीं उठाते, क्योंकि ऐसे मनुष्यों में विचार-शक्ति सोई हुई रहती है। विचारवान होने के लिए इस शक्ति को जगाने की आवश्यकता है। जितना अधिक विचार करने का अभ्यास होगा, उतनी ही विचार शक्ति अधिक जागृत होगी, क्योंकि विचार करना स्वाभाविक करने ही से आता है। यदि इच्छा तीव्र हो, तो विचार करते मनुष्य कपिल-कणाद आदि की तरह अपना सब विचारमय बना सकता है।

परमात्मा ने मनुष्य को ऐश्वर्ययुक्त बनाकर उसे शक्ति का एक अश प्रदान किया है। यदि मनुष्य उस अश सदुपयोग करे, तो जो चाहे सो प्राप्त कर सकता है। उसके पास विश्व-भण्डार की कुञ्जी है। यदि उसका उचित उपयोग करे, तो जैसे सोने चाँदी को गलाकर साँचे में ढाला जाता है, वैसे ही

ा सर्वशक्ति के अंश से यथोचित लाभ उठाने के लिए वह अपने
चारों को उच्च और दृढ़ बनावे। जैसे विचार होंगे, वैसा ही
त शक्ति का उपयोग और फल होगा।

किसी पदार्थ की उत्पत्ति के पूर्व उसका मानसिक चित्र
स्तित्व में आता है। हवाईजहाज, मोटर, रेलगाड़ी आदि
न्तु एकाएकी नहीं बनी थीं। प्रथम वैज्ञानिकों ने इसका विचार
िया था और दृढ़ता-पूर्वक परिश्रम करने पर वे अपने विचारों
ा कार्यरूप में ला सके थे। दृढ़ विचार का अर्थ है—विचार
ौर उसे कार्य-रूप में लाने की इच्छा और उद्योग। जो विचार
ेवल होते हैं, और जिनमें तीव्र इच्छा नहीं होती, वे विचार
हीं, किन्तु कल्पनामात्र हैं। एक वैज्ञानिक ने एक नवीन विष
ाने का विचार किया और तदर्थ कार्य भी आरम्भ कर दिया।
दि उसका वह संकल्प पूरा न हुआ, तो भी उसका बनाया
ुआ पदार्थ विषाक्त तो अवश्य होगा—अमृत न होगा; क्योंकि
िचार ही जब बुरे होंगे, तब फल अच्छा कहाँ से हो सकता है?
ैसा बीज बोया जायगा, वैसा ही फल लगेगा।

यदि हम नित्य होनेवाले कार्यों पर मुहूर्त मात्र विचार
रें, तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक कार्य करने के पूर्व हम उसका
िचार करते हैं। जो कार्य हम अचानक कर बैठते हैं, वह भी
म अचानक नहीं करते, किन्तु उसका भी विचार मस्तिष्क में
हले उठता है, तब हम उसी क्षण उस कार्य को कर डालते हैं।
स्तिष्क में विचार उठे बिना मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता,
ह स्वयं सिद्ध सत्य है। कई मनुष्य ऐसे होते हैं कि जिनकी
ुद्धि पापमय नहीं होती। वे व्यभिचारादि कुकर्म छोड़ने की प्रतिज्ञा

करते हैं और उसे पालन करने की पूर्ण इच्छा भी उनमें होती है, किन्तु वे फिर भी उन पापों में कभी-कभी लिप्त हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य को सब लोग प्रायः यही समझते हैं कि दैववश या स्वभाववश वे पाप करते हैं, किन्तु ऐसा समझना महाभूल है और उन का भ्रम है। यदि वे शांति पूर्वक विचारें, तो ज्ञात होगा कि वे दैववश या स्वभाववश प्रतिज्ञा भंग नहीं करते, किन्तु विचारों के कारण ही उनका अधःपतन होता है। प्रतिज्ञा करने पर भी उन के मस्तिष्क में वैसे ही विचार आया करते हैं, और उस समय वे अपने को ऐसा कह के भुलावा देते हैं कि इन विचारों से क्या होता है। हमने तो प्रतिज्ञा की है कि अब हम कुकर्म नहीं करेंगे, परन्तु वास्तव में उन विचारों के प्रभाव से ही वे कुकर्म करते हैं। क्योंकि ये विचार गुप्त मन में अंकित हो जाते हैं और समय पाकर फलीभूत होते हैं। इससे किसी भी बुरे काम से बचने के लिए उस बुरे काम के विचारों को मन में न आने दें।

बुरे संग के अशुभ भावों से बचने का उपाय

संग का असर, वार्त्तालाप हो या न हो, अवश्य होता है। विचारों का प्रभाव समीपस्थ मनुष्य पर ऐसा होता है कि साधारणतया उसे जानना कठिन है। बुरे संग से सदा बचना चाहिए। परन्तु, सर्वथा बचना कठिन है। जैसे यात्रा में या व्यवहार में दुष्ट-संग से बचने के लिए अपने प्राणों की गति को सुधारना पड़ता है।

प्रथम पूरक करते समय यह भावना करो कि मैं शुद्ध

शुद्ध मुक्त हूँ; और रेचक करते समय ऐसी भावना करो कि मेरे हृदय से प्रेम और भक्ति की भरी हुई धाराएँ निकलकर मेरे शरीर के आस पास विचारजन्य गोलाकार तेज का आवरण बन रहा है। ऐसी दृढ भावना के साथ सात बार पूरक रेचक करने से ऐसा पक्का आवरण हो जायगा कि इसपर दूसरों के अशुद्ध भावों का किंचित् प्रभाव न पड़ सकेगा। इसी प्रकार सोते समय भी यदि आवरण बनाया जाय, तो बुरे स्वप्नों से कभी क्लेश न होगा और निद्रा भी अच्छी आवेगी।

तुम उसी समय तक निर्बल और दीन दशा में रहोगे, जब तक कि तुम तुच्छ और नीच विचारों के अधीन रहोगे। तुमको अपने मन में उच्च भावों को और उच्च आकांक्षाओं को स्थान देना चाहिए।

तुम्हें वासनाओं के वशीभूत न हो जाना चाहिए, और न उनका दास ही बनना चाहिए, किंतु अपने उत्तम विचारों से उन्हें दबाकर अपने वश में करना और अपना दास बनाना चाहिए।

यदि तुम अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लोगे और उन पर अपना पूर्ण स्वामित्व जमा लोगे, तो वे इन्द्रियाँ तुम्हारी दासी होकर रहेंगी और तुहारी सेवा करेंगी।

मनुष्य में एक प्रकार की पाशविक शक्ति रहती है, जो समय समय पर बदलती रहती है। क्रोध के आवेश में मनुष्य अन्धा हो जाता है, जिससे वह मनुष्यत्व को भूलकर आत्मगौरव और स्वाभिमान को भी तिलांजलि दे देता

करते हैं और उसे पालन करने की पूर्ण इच्छा भी उनमें होती है, किन्तु वे फिर भी उन पापों में कभी-कभी लिप्त हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य को सब लोग प्रायः यही समझते हैं कि दैववश या स्वभाव-वश वे पाप करते हैं, किन्तु ऐसा समझना महाभूल है और उन का भ्रम है। यदि वे शांति पूर्वक विचारें, तो ज्ञात होगा कि वे दैववश या स्वभाववश प्रतिज्ञा भंग नहीं करते, किन्तु विचारों के कारण ही उनका अधःपतन होता है। प्रतिज्ञा करने पर भी उन के मस्तिष्क में वैसे ही विचार आया करते हैं, और उस समय वे अपने को ऐसा कह के भुलावा देते हैं कि इन विचारों से क्या होता है। हमने तो प्रतिज्ञा की है कि अब हम कुकर्म नहीं करेंगे, परन्तु वास्तव में उन विचारों के प्रभाव से ही वे कुकर्म करते हैं। क्योंकि ये विचार गुप्त मन में अंकित हो जाते हैं और समय पाकर फलीभूत होते हैं। इससे किसी भी बुरे काम से बचने के लिए उस बुरे काम के विचारों को मन में न आने दें।

बुरे संग के अशुभ भावों से बचने का उपाय

संग का असर, वार्त्तालाप हो या न हो, अवश्य होता है। विचारों का प्रभाव समीपस्थ मनुष्य पर ऐसा होता है कि साधारणतया उसे जानना कठिन है। बुरे संग से सदा बचना चाहिए। परन्तु, सर्वथा बचना कठिन है। जैसे यात्रा में या व्यवहार में दुष्ट-संग से बचने के लिए अपने प्राणों की गति को सुधारना पड़ता है।

प्रथम पूरक करते समय यह भावना करो कि मैं शुद्ध

शुद्ध मुक्त हूँ; और रेचक करते समय ऐसी भावना करो कि मेरे हृदय से प्रेम और भक्ति की भरी हुई धाराएँ निकलकर मेरे शरीर के आस पास विचारजन्य गोलाकार तेज का आवरण बन रहा है। ऐसी दृढ भावना के साथ सात बार पूरक रेचक करने से ऐसा पक्का आवरण हो जायगा कि इसपर दूसरों के अशुद्ध भावों का किंचित् प्रभाव न पड़ सकेगा। इसी प्रकार सोते समय भी यदि आवरण बनाया जाय, तो बुरे स्वप्नों से कभी क्लेश न होगा और निद्रा भी अच्छी आवेगी।

तुम उसी समय तक निर्बल और दीन दशा में रहोगे, जब तक कि तुम तुच्छ और नीच विचारों के अधीन रहोगे। तुमको अपने मन में उच्च भावों को और उच्च आकांक्षाओं को स्थान देना चाहिए।

तुम्हें वासनाओं के वशीभूत न हो जाना चाहिए, और न उनका दास ही बनना चाहिए, किंतु अपने उत्तम विचारों से उन्हें दबाकर अपने वश में करना और अपना दास बनाना चाहिए।

यदि तुम अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लोगे और उन पर अपना पूर्ण स्वामित्व जमा लोगे, तो वे इन्द्रियाँ तुम्हारी दासी होकर रहेंगी और तुहारी सेवा करेंगी।

मनुष्य में एक प्रकार की पाशविक शक्ति रहती है, जो समय समय पर बदलती रहती है। क्रोध के आवेश में मनुष्य अन्धा हो जाता है, जिससे वह मनुष्यत्व को भूलकर आत्मगौरव और स्वाभिमान को भी तिलांजलि दे देता

है। यदि मनुष्य उस पाशविक शक्ति पर अपना अधिकार जमा ले और उसे अपने वश में कर के उचित रीति से काम में लावे, तो ईश्वरीय बल को बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर सकता है।

बुरे विचारों में अद्भुत शक्ति है। देखिए, मनुष्य को प्राण से प्रिय कोई वस्तु नहीं है। प्राण के लिए धन, आदर ही क्या, पृथ्वी की समस्त वस्तुएँ भी प्राणों के शतांश के बराबर नहीं हो सकतीं, यह जान कर ही शास्त्र में कहा है कि 'आत्मार्थे पृथ्वी त्यजेत्।' आत्मा के लिए पृथ्वी को भी त्याग दे। जिस प्राण की फिर से प्राप्ति नहीं हो सकती, उसे मनुष्य स्वय बाहर निकाल देने को उद्यत हो जाता है, इसका कारण केवल निराशा के विचार ही हैं।

आत्मघात करने के मानसिक विचार केवल निराशा ही से होते हैं।

संसार में नित्य पाँच सौ आत्मघात के बलिदान लेकर निराशा राक्षसी स्वस्थ होकर बैठ जाती, तो कोई हानि नहीं थी, किंतु ससार में नित्य पाँच सौ मनुष्य आत्मघात करते होंगे, तो नित्य पाँच हजार मनुष्य निराशा से कुछ समय के लिए या आजन्म के लिए पागल भी हो जाते होंगे। वे पाँच लाख मनुष्य जीवित होते हुए भी मृतक समान होते हैं। और बहुतों को तो इस निराशा राक्षसी के विचारों से सारा ससार शून्य मैदान दिखाई देता है, इसलिए वे रात का दिन किया करते हैं, अर्थात् उन्हें न रात को निद्रा और न दिन को चैन मिलती है।

निराशा से पागल होकर सताये हुए निद्रा-रहित तड़फड़ाते हुए भक्ष्य को देखकर आत्मघात कर लेना अच्छा जान पड़ता

है, और कहते हैं कि तात्कालिक मृत्यु हो जाना ही अच्छा है ; परन्तु दुर्दशा सही नहीं जाती।

ईश्वर करे कि निराशा का छोटा-सा प्रसग भी किसी पर न आवे। प्रत्येक मनुष्य को आत्म-सामर्थ्य की पूरी पहचान हो जाय और किसी पर भी निराशा का छोटा-सा प्रसग भी न आवे, यही हमारी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है।

सर्वार्थ सिद्धि करनेवाली आशा है और सर्वार्थ नाशक उसी की बहन निराशा है।

इसका केवल एक ही उत्तम उपाय है पुरुषार्थ। धैर्य-पूवक आत्म-विश्वास से पुरुषार्थ करना परमोत्तम उपाय है। इससे आशा की वृद्धि और निराशा का ह्रास हो सकता है इसी से भगवान् ने गीता में भी प्रतिज्ञा-पूर्वक कहा है—

अनन्याश्चिंतयन्तो मां ये जना॰ पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो हमको अनन्य होकर भजता है, उसका योगक्षेम हम वहन करते हैं, अर्थात्—योग्य अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की हम स्वय रक्षा करते हैं। ऐसा वचन देनेवाले ईश्वर पर निष्ठा रखने को किसी भी निराशा से मुक्त होने के लिए मनुष्य मात्र को यत्न करना चाहिए।

तुम्हारी ईश्वर पर निष्ठा नहीं है, इसी से तुम निराशा से निकल कर ऊँचा सिर करके नहीं चल सकते, इसलिए हे प्रिय मित्रो! भगवान् ने जो गीता में वाक्य दिया है, वह केवल एक बार पढ लेने को नहीं दिया है, किन्तु श्रीकृष्ण भगवान् ने प्रत्येक मनुष्य को वचन पूर्ण करने का सामर्थ्य भी दिया है, इसलिए

उठो और दृढ़ निश्चय से पुरुषार्थ-पूर्वक अपने अभीष्ट की सिद्धि और निराशा का समूल नाश करो।

हे सज्जनो, आत्मविश्वास, मानस-शास्त्र के सरल नियमों को पहचान, और इनके बल पर प्रत्येक मनुष्य इस निराशा को निवारण करने का अधिकार प्राप्त कर सकता है।

केवल निराशा से ही सर्व क्लेश नहीं उठाने पड़ते, किन्तु इसके सहकारी कार्य, बुरे विचार और बुरे संग भी हैं, जिनसे महान् हानि उठानी पड़ती है, इसलिए उनको भी जानने की आवश्यकता है।

बुरे विचारों का वर्णन बहुत हो चुका है, इससे बुरे संग का विशेष वर्णन आवश्यकीय है।

बुरी जगह, बुरा अन्न, बुरा ग्रन्थ, जिसमें अश्लील ब्रह्मचर्य-नाशक और उत्तेजना बढानेवाले विषय हों, बुरा दृश्य, बुरी बात, बुरा वातावरण जहाँ मद्यपी, वेश्यागामी, जुआरी, चोर आदि रहते हों—ये सब बातें बुरे संगही में सम्मिलित हैं।

लगातार बुरे संग और बुरे परमाणुओं से जब भीतर के अच्छे परमाणु दब जाते हैं, तब बुरी बातें स्वाभाविक तथा अच्छी लगने लगती हैं।

जैसा मन होता है, वैसी दृष्टि होती है। जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही दृश्य देख पड़ता है। सच्चे साधु को सब साधु ही देख पड़ते हैं। चोर को चोर और कामी को सब कामी ही दीखते हैं और लोभी को सब लोभी ही दिखाई पड़ते हैं।

बुरे वातावरण में रहते रहते चित्त का स्वभाव बुरा हो जाता है। फिर उसमें बुरे सकल्प उठने लगते हैं। जिसके चित्त में बुरे सकल्प उठते हैं, उससे बढ़ा अपराधी और कौन होगा, क्योंकि वह अपने बुरे सकल्पों को फैलाकर दूसरों को भी बुरा बनाता है।

चित्त में सदा सत्-सकल्प रहना चाहिए। उसके लिए सत्सग, सद्ग्रथ पाठ, सत्कर्म, सद्गुरु सेवा आदि की आवश्यकता है। जिसका चित्त सत् सकल्प से भरा पड़ा है, वही सुखी और परोपकारी है, क्योंकि वही अपने सत्-सकल्पों से दूसरों को सन्मार्ग में लगा सकता है।

यह निश्चय करो कि मेरे चित्त में कभी बुरी कल्पना नहीं आ सकती, मैं पवित्र हूँ, भगवान् की कृपा से मेरा हृदय शुद्ध हो गया है। भगवान् का अभय हस्त सदा मेरे सिर पर है, उसकी छत्रछाया में पाप ताप मेरे पास नहीं आ सकते।

कुछ समय प्रति दिन एकांत में बिताओ, मौन रहो, एकातवास और वाणी का मौन भी बड़ा लाभकारी है। ये दोनो भगवत् ध्यान तथा नामस्मरण में अति सहायक हैं।

वाणी का सयम कर अनावश्यक बातें कभी न करो तथा किसी की निन्दा और चुगली भी न करो, न स्तुति ही करो। कठोर वचन न बोलो, असत्य तथा दूसरे का अहित करनेवाले शब्द कभी न बोलो। मन में भय, अशान्ति, उद्वेग विषाद को कभी न आने दो। भगवान् की दया अथवा आत्मा की पवित्रता और नित्यता पर विश्वास करके सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहने का उद्योग करो।

उत्तेजना से सदा बचे रहो। धैर्य कभी न छोड़ो, उत्तेजना और अधैर्य से शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं, जिनसे छूटना कठिन हो जाता है।

किसी का अनादर न करो तथा किसी से घृणा भी न करो और किसी का चित्त न दुखाओ। स्वयं दुःख सह लो, परन्तु स्वार्थवश किसी को कष्ट न दो। किसी अच्छे काम में सदा लगे रहो, किसी का चित्त न तोड़ो, उसे उत्साह दिलाये रहो और यथासंभव उसके अच्छे काम में सहायता करो। गरीब, दीन, दुःखी, रोगी और आतुरों में भगवान् के विशेष रूप को देखकर उनकी सेवा करो और बड़े आदर तथा प्रेम-पूर्वक उनसे मिलो और यथाशक्ति उनके दुःख दूर करने में सहायता करो और प्रभु के भजन में जहाँ तक हो सके अपना समय लगाओ।

हृदय की सरलता में देवत्व और ऋषित्व है, और कपट में असुरत्व है, इसलिए मन को सरल स्वभाववाला बनाओ। यदि युक्ति से बात न बना सको, तो चिंता नहीं, परन्तु निश्चय रखो कि कपट-चातुरी से अपने को बुद्धिमान् सिद्ध करने वालों से तुम निश्चय ही उच्च स्थिति में हो।

एक महात्मा का वचन है कि आजकल प्रायः लोगों को ऊपरी सुहावनी बातें करना आ गया है, परन्तु मन में दंभ, कपट भरा है। पहले के लोग चाहे बोलना न जानते हों, परन्तु उनका हृदय सरल था, वे अपना दोष छिपाना नहीं जानते थे, दंभी, कपटी बनकर सुहावनी बातें बोलनेवाले सभ्य की अपेक्षा सरल ग्रामीण बनना सच्ची उन्नति का लक्षण है। सरलता में पवित्रता है और कपट में अपवित्रता है। कपटी मनुष्य जितना दूसरे को

हानि पहुँचाता है, उससे अधिक वह अपनी हानि करता है।

अपने पापों को मत छिपाओ और पुण्यों को प्रकट न करो। छिपाने से पाप बढ़ेंगे और प्रकट करने से पाप घटेंगे। वैसे ही पुण्य प्रकट करने से घटेंगे और छिपाने से पुण्य बढ़ेंगे। पुण्य को कपूर की भाँति जानो। यदि बोतल का मुँह खोलकर रखोगे, तो वह उड़ जायगा। पाप बुरी वस्तु है, इसलिए पाप को छिपाकर रखोगे, तो भीतर-ही-भीतर विष उत्पन्न कर हृदय के सब शुद्ध भावों को नष्ट कर देगा।

जीवन के एक क्षण को भी मूल्यवान जानो और बड़ी सावधानी से प्रत्येक क्षण को भगवत् चिंतन करते हुए लोक-हित के कार्य में बिताओ।

अहित केवल वाणी और शरीर से ही नहीं होता है, किंतु मन से भी होता है। यदि तुम्हारे मन में बुरा विचार आया, तो जान लो कि तुम अपना और पराया अहित करनेवाले हो गये, इसलिए बुरा विचार कभी मन में न आने दो। यदि पूर्व संस्कार-वश आ जाय, तो उसे तत्काल ही बाहर निकाल दो। बुरे विचार को क्षणभर मन में न ठहरने दो।

विचार दो प्रकार के होते हैं—अच्छे और बुरे। उनमें अच्छे विचार—सत्य भाषण, क्षमा, दया, परोपकार, ईश्वराराधन आदि हैं, और बुरे विचार—असत्य भाषण, क्रोध, निर्दयता, दूसरों को दुःख देना, अपकार करना, स्वार्थपरता आदि हैं।

अच्छे विचारों का प्रभाव मन पर अच्छा और बुरे विचारों का बुरा प्रभाव हमारे मन और शरीर पर तथा समीप रहनेवालों, संग रहनेवालों, तथा मोहल्लेवालों पर भी पड़ता

है। इसका वर्णन आगे क्रम से सविस्तर किया जायगा।

जहाँ तक हमारे विचारों की पहुँच है, वहाँ तक जगत् को हम सदा प्रभावित करते रहते हैं और उससे हम भी प्रभावित होते रहते हैं। विचारों के कंपन से जो क्षणभर में हजारों कोस जा सकते हैं, विचित्र घटनाएँ निरन्तर होती रहती हैं। जैसे—किसी का पुत्र अमेरिका में पढ़ता है, तो जिस समय वह अपने पुत्र के संबंध में विचार करता है, उसी समय उसके पुत्र के मन में भी पिता के सम्बन्ध में विचार उठने लगते हैं। इसका कारण पूर्वोक्त विचार के कम्पन ही हैं। इनका ज्ञान प्राप्त करने से विस्मयकारक रहस्यमय ग्रंथि का उद्घाटन होता है।

सद्विचारों को मन में लाने से मनुष्य दुष्कर्मों से बच सकता है। जब मनुष्य अपने मन में दुष्ट विचारों को स्थान देता है, तो वह तामसी वृत्ति का अनुभव करने लगता है। यदि कोई सदा बुरे विचार करे, उन्हीं का चिन्तन करे और उन्हीं को मन में धारण करे, तो उसे अपना स्वभाव और अपनी प्रवृत्ति बदलने में बड़ी कठिनता प्रतीत होगी।

प्रत्येक मनुष्य अभ्यास से अपने विचार और वाणी में आशातीत सुधार कर सकता है। हमारी अन्तरात्मा पर हमारे भावों का बहुत ही प्रभाव पड़ता है। यदि हमारे भाव शुद्ध हों, तो हमारी अन्तरात्मा हमें दुष्ट कर्मों की ओर जाते समय सचेत कर देगी और यदि हमारे भाव बुरे हैं और हम अपनी अन्तरात्मा से पूछें, तो हमारी अन्तरात्मा हमें उसके करने न करने का परिणाम समझाने लगेगी।

जो बहुत काल से बुरी भावना में पड़े हुए हैं, उनको अन्त

रात्मा का वह शब्द सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि भावों के कोलाहल में उसका शब्द दब जाता है।

कोई ऐसे भी देखने में आते हैं कि जिन्हें अपने को रोगी कहने तथा अपने दुःख को दूसरों से कहने में और बढ़ा कर कहने में सुख प्रतीत होता है, किन्तु इसका परिणाम कुछ काल तो प्रतीत नहीं होता, किन्तु बार-बार रोगी होने की बात करते-करते और मन-कल्पित क्लेशों का वर्णन करते-करते भावनानुसार वह रोग वास्तव में उन्हें हो जाते हैं और वे स्वयं रोगग्रस्त हो जाते हैं। बहुत से लोग वृथा ही अपने जीवन को इधर-उधर की बातों में बिता देते हैं, जब कि उसी से अपना जीवन आनन्द पूर्ण बना सकते थे। इससे मनुष्य को उचित है कि वह सदा सज्जनों का अनुसरण करे और उसके नित्य के व्यवहारों से शिक्षा ग्रहण करे। जिनके विचार सदा पवित्र रहते हों और जो सदा अपवित्र विचार रखते हों—उन दोनों का मिलान करे और देखे कि नीच श्रेणी के लोगों का जीवन जेलखानों और पागलखानों में ही बीतता है और उत्तम श्रेणी के लोगों का जीवन कितना शान्त एवं आनन्द-पूर्वक व्यतीत होता है तथा उनका प्रभाव उनके न रहने पर कैसा मधुर और स्थिर होता है।

श्रेष्ठ पुरुषों का यही कथन है कि हम जैसे विचार करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं, क्योंकि हमारे प्रत्येक विचार का प्रभाव प्रत्येक अंग पर पड़ता है और सब अंग मन की प्रेरणा से काम करने में लग जाते हैं।

ऐसे ही यदि हम विशेष प्रकार के विचारों को अपने मन में

आने दें, तो कुछ काल पश्चात् हमारा शरीर, हमारे आचार व्यवहारादि सब उसी प्रकार के होने लगते हैं। मनुष्य के विचारों का प्रभाव उसके स्वास्थ्य और अंगों को बनावट पर बहुत पड़ता है। मन ही मारता है, मन ही जिलाता है और मन ही में रोगों की जड़ है। यदि विचार अशुद्ध हों, तो रोग आ दबाता है। लापरवाही और आत्मविश्वास न करने के कारण ही अनेक रोग सताते हैं।

जैसे एक गरीब, लाटरी में १०० रुपये पुरस्कार मिलने का समाचार सुनकर एकदम प्रसन्नता में मग्न हो जाता है, उसके मुखपर प्रसन्नता की लाली दौड़ने लगती है और शरीर में फुर्ती प्रतीत होती है। एक बालक को दूसरा बालक चिढ़ाता है, तो तत्काल उसके मुख पर श्यामता आ जाती है।

क्रोध से मनुष्य के नेत्र लाल हो जाते हैं, हृदय में जलन उत्पन्न होती है, रक्त उबलने लगता है, भय से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। चिंता चिता के सदृश मनुष्य को जीते-जी जलाकर मार डालती है। बुरे समाचार सुनते ही भूख उड़ जाती है और तत्काल विकलता एवं उद्विग्नता हो जाती है। अमेरिका में सेनेटर विलियम बहुत दिनों से हृद्रोग से पीड़ित था। दिनोदिन उसकी प्रकृति बिगड़ती जाती थी, परन्तु भूकंप होने से पूर्व उसे हिलने की भी शक्ति न रही थी, खाने को हलका और शीघ्र पचनेवाला भोजन उसे दिया जाता था, किन्तु जब भूकंप के दिन, पड़ोस के होटल में आग लगने का समाचार आया, तब विलियम को अग्नि से अपना सामान बचाने के लिए मन में ऐसा वेग उत्पन्न हुआ कि वह सात बार अपना मूल्यवान्

सामान सातवीं मंजिल से नीचे लाया और उस अकेले ने बहुत-सा सामान जलने से बचाया।

विचारों के आन्दोलन में कुछ भी सामर्थ्य नहीं है, ऐसा माननेवाले मनुष्य कहेंगे कि एक पैर भी न चल सकनेवाले में इतनी शक्ति कहाँ से आई, किन्तु इसका उत्तर यही है कि वह शक्ति विचारों के वेग से आई। फिर उसी क्षण से विलियम की तबीयत अच्छी हो गई। उसकी जठराग्नि भी प्रबल होकर पत्थर पचाने में सामर्थ्य हो गई।

दूसरा वृत्तान्त—भूकम्प के समय एक वृद्धा स्त्री लकवे से कई वर्षों से पीड़ित थी। जब सब लोग अपनी-अपनी जान बचाने को भागने लगे, तब उस वृद्धा के मन में भी अपनी जान बचाने के लिए विचार का ऐसा प्रबल वेग उत्पन्न हुआ कि मुड़े हुए अंगों में एकदम स्फूर्ति होकर वह बिछौने पर से उठकर और सबके साथ ऊपर से उतरकर भागने लगी। उस दिन से फिर कभी भी लकवे की व्यथा उसे नहीं हुई। उस वृद्धा के शरीर में नवीन रक्त-प्रवाह आरम्भ हो गया। ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि विचारों में कुछ भी बल नहीं है?

तृतीय वृत्तान्त—उसी समय दो स्त्रियाँ एक भारी बक्स को रस्सी से तीन मील तक खींचकर ले गईं। उस बक्स में उन दोनों के मूल्यवान् आभूषण और वस्त्र थे, परन्तु वह इतना भारी था कि उसे दस आदमी भी कठिनता से खींच सकते थे, तथापि उन दो स्त्रियों ने नगर के बाहर तीन मील मार्ग क्रमण कर एक टेकरी पर चढ़ा दिया था। दूसरे दिन लोगों ने उनसे पूछा कि मार्ग में तुमको थकावट नहीं मालूम हुई, तो उन्होंने कहा कि उस

समय हमें किंचित थकावट नहीं प्रतीत हुई और न हमें बक्स वजनदार ही प्रतीत हुआ। हम दोनों क्या करती थीं, इसका उस समय भान भी हमें न था; किन्तु हमारे मूल्यवान् आभूषण और वस्त्र इसमें हैं, इनको किसी प्रकार बचाना चाहिए, इतना विचार ही हमारे मस्तिष्क में प्रबल वेग से घूम रहा था, परन्तु आज इस स्थान से अन्यत्र ले जाने का हम दोनों ने बड़ा प्रयत्न किया, तो भी अपनी जगह से यह बक्स तिलभर न हटा, बड़ा आश्चर्य है। ऐसे कई दृष्टांत अमेरिकन पत्रों में छपे हैं। बुद्धिमानों को इन्हीं से विचार-बल पर दृढ विश्वास करना चाहिए।

इन दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि व्याधियों को दूर करने वाले कारण हमारे ही शरीर में हैं। औषधियों से जो रोगी असाध्य जानकर छोड़ दिये गये थे, वे केवल विचार-बल के वेग से ही आरोग्य हो गये, इसलिए रोग के विचारों को विस्मरण करके जब आरोग्यमय विचारों में मन रमता है, तभी सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त होता है। मैं रोगी नहीं, वरन् आरोग्य-स्वरूप हूँ। ऐसे एक ही प्रकार के विचार में निरंतर तत्पर हो जाने से, कैसी भी महान् व्याधि क्यों न हो, वह एक क्षण में दूर हो जायगी। प्रतिकूल अप्रिय विचारों को सर्वथा त्याग कर अनुकूल तथा प्रिय विचारों को ग्रहण करना आ जाय, तो फिर संसार में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रह सकती। जिसने अपने मन को जीत लिया, उसने तीनों लोकों को जीत लिया, ऐसा शास्त्रों का कथन है। वह सब सत्य है। निश्चित विचारों को मन में आरूढ करना और अशुद्ध विचारों को मन में उत्पन्न ही न होने देना, इसी का नाम मन को जीतना है।

बलवान् विचार निर्बल विचारों को जीत लेते हैं, इससे जब दुर्बल विचार बलवान् विचारों से हार जाते हैं, तब दुर्बल विचारों का प्रभाव नष्ट हो जाता है। जैसे भूकंप के समय अपनी जान बचाने के लिए 'मैं रोगी हूँ, निर्बल हूँ' ऐसे चिरकाल के जमे हुए विचार बलवान् होने पर भी शीघ्रातिशीघ्र वेग से उत्पन्न होकर, उत्तम विचार समस्त रोगों को दूर करते हुए शरीर बलवान् बन गये और चिरस्थायी रोग के विचार मन से एकदम अदृश्य हो गये। उनके साथ तज्जन्य व्याधि भी समूल नष्ट हो गई, इसलिए अप्रिय विचारों को बलात्कार से संकेत और आज्ञा देनेवाले शब्दों में निरन्तर दबाना ही उत्तम विचारों को धारण करने का मुख्य साधन है।

जो शक्ति का विचार करते हैं, वे शक्ति को प्राप्त करते और जो साहस का विचार करते हैं, वे साहसी हो जाते हैं, और जो विचारते हैं कि हम सब कुछ कर सकते हैं, वे सब कार्यों में सफल होते हैं, परन्तु जो विचारते हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते, वे किसी कार्य को पूरा नहीं कर सकते। यही पवित्र साधारण विचार है। इससे यह सिद्ध हुआ कि विचार ही कार्य में परिणत हो जाते हैं।

जिसके विचार सदा प्रसन्नता से पूर्ण और ईश्वर की ओर लगे रहते हैं, वह सदा उन्नति करता जाता है, और जो सदा शोक-पूर्ण और ईश्वर से विमुख रहता है, उसके अधःपतन में संदेह नहीं।

उस सर्वव्यापक परमात्मा में सब विचार जोड़ देने से ही सब प्रकार का सुख और सब प्रकार से उन्नति होती है, और सब दुःखों का नाश हो जाता है।

... कहा है कि मनुष्य जैसा विचार करता है, वैसा ... है ... पर ही ... । विचार का ... क्रिया पर भी पड़ता है। ... समय मनुष्य के ... हैं। मनुष्य के बाहरी ... भली भाँति जाने जा सकते हैं। ... हैं, वे भली भाँति मनुष्य की ... उसके विचारों का पता लगा सकते हैं।

..., ... तुमने कभी तक सोचा है कि संसार में ... कुछ हैं ही नहीं, और हमको ऐसी ही दु... हुई अवस्था में ही सदा रहना है, तो आज ही से ... निकाल दो। अब तक जो हुआ सो ... के लिए ऐसा विचार करो कि यह संसार ... है, मेरी दिनोंदिन उन्नति हो रही है, मैं जो चाहूँ सो ... है। तुममें परमात्मा का अंश है। ऐसे दृढ़ विचार मन में ... और बुरे विचारों को एक सेकेंड भी मन में न रहने दो। ... तुममें नया बल, नया उत्साह, नई शक्ति और ... होंगे। विचार तुम्हारे अधीन है। तुम्हारा ... है। जो तुम काम दोगे, वह उसे अवश्य करना पड़ेगा। ... संसर्ग बुरी वस्तुओं से होगा, तो उससे बुरा फल ... क्योंकि विचार के कंपन केवल तुम में ही नहीं रह ... फैलकर तुम्हारे विचारानुसार अन्य वस्तुओं पर ... प्रभाव डालते हैं, और तुम्हारा संसर्ग उससे करा देते हैं। इससे तुम्हें दुखों से सामना करना पड़ता है, या तुम स्वतः ऐसा करो

बात कर डालते हो, जिससे तुम्हारी हानि हो। कारण यह है कि उस विचार का प्रभाव तुम्हारे अग अग में व्याप्त हो जाता है। इससे तुम उसके अनुकूल कार्य करने लग जाते हो, शास्त्रों में यह बात कही गई है कि ससार में जितने जीव हैं, वे सब परमात्मा के अश हैं, और मनुष्य उन सब में श्रेष्ठ है। मनुष्य को जो ईश्वर का अश माना है, उसका कारण यही है कि वह उसी वृक्ष का बीज है, जिसका प्रथम बीज ईश्वर है, इसीलिए उसमें ये सब गुण वर्तमान हैं, जो उस परब्रह्म परमात्मा के हैं।

जीवन-रूपी क्षेत्र में विचार एक बीज के सदृश है। यदि काँटे का बीज बोया जायगा, तो उसमें गुलाब के फूल कैसे उत्पन्न होंगे? ऐसे ही, जैसा विचार होगा वैसा ही उसका फल होगा। इससे हम गुलाब ही का बीज क्यों न बोवें? यदि कोई कहे कि यह कैसे संभव है कि हम शुभ विचार ही करें। सो इसके लिए तुम्हें थोड़ा धैर्य धारण करना चाहिए। तुम्हारी वर्तमान दशा तुम्हारे अब तक के कर्म और विचारों का फल है। तुमने अब तक जो किया या विचारा है, उसका फल तो अवश्य भोगना पड़ेगा, परन्तु यदि आज से नये जीवन में प्रवेश करना चाहते हो, तो अपने पूर्व के विचारों को छोड़ दो। उसका उपाय यह है कि इन पर जितना कम ध्यान दोगे, उतनी ही कम देर तक वे ठहरेंगे और उतनी ही निर्बल नींव उनकी पड़ेगी। ससार में किसी वस्तु की वृद्धि के लिए उसके भरण-पोषण की आवश्यकता होती है, वैसे ही किसी विचार के प्रभाव की वृद्धि के लिए केवल उसी विचार को बारम्बार मन में लाना चाहिए। ऐसे ही जिस विचार को दूर करना हो, तो उसका सहज उपाय यह है कि उस विचार को

पुनः मन में उठने न दो , किन्तु वारम्बार उसके नाश करने का सकेत मन-ही-मन देते रहो कि ये विचार चले जायँ या भस्म हो जायँ, तो तत्काल वे लुप्त हो जाँयगे । एक बार अनुभव करके देखो ।

प्रत्येक मनुष्य इन विचार-लहरों से प्रभावित किया जा सकता है । विचार की लहरों का प्रभाव अत्यत शक्ति-सम्पन्न होता है और वांछित फल-प्राप्ति के लिए एक विचार-लहर चाहे जितनी बलवान् हो, उसकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त है । तुम दूर के विचारों से प्रति दिन प्रत्येक कार्य में प्रभावित होते जाते हो, इससे जब तुम विचार-शक्ति को समझ लोगे, तब तुम उसे अपने अधिकार में कर सकोगे । तुम्हारे विचार के प्रभाव केवल दूसरों पर ही नहीं पड़ते , किंतु तुम पर भी सदा के लिए प्रभाव जमा सकते हैं । धर्म-ग्रथों में ठीक लिखा है, कि मनुष्य जैसे विचार करता है, वैसा ही होता है , इसलिए हम लोग विचार के जीव हैं, यह सिद्ध हुआ ।

अपने विचारों के रचयिता, पालन-कर्ता और संहार-कर्ता तुम्हीं हो । जिस विचार को प्रकट करना चाहो, उसे तुम प्रकट कर सकते हो और जिसे चाहो बढा कर विकसित और पालन कर सकते हो और जिसे चाहो उसे नाश भी कर सकते हो। इससे हे सज्जनो, इस महान् सत्य पर विचार करो और इस विषय को कार्य में लाकर अपना जीवन सफल करो ।

यदि तुम साधारण विचारों में जीवन व्यतीत करते हो, तो उन्हीं विचारों के अधीन रहोगे और यदि विचारों के प्रभावों को जानकर उच्च विचार-लहरों को स्वीकार और नीच विचार-लहरों

को त्याग करोगे, तो तुम शीघ्र ही उच्च विचार और उत्तम लक्षणवाले बन जाओगे।

गुप्त विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि मनुष्य पर दूसरों के विचारों का कैसा प्रभाव पड़ता है। यह बात केवल दूसरों के प्रेरित विचारों ही में नहीं होती, किन्तु सञ्चालित विचारों को जब स्थान नहीं मिलता, तब भी वे अपने समान योग्यता का स्थान जहाँ पाते हैं वहाँ घुस जाते हैं।

बहुत वर्ष पूर्व विचार करनेवालों की विचार-लहरों से भुवर्लोक भरा हुआ है और अब भी उनमें इतनी सामर्थ्य है कि जिन मनुष्यों का मन उन विचारों को ग्रहण करने को उद्यत हो, उनपर वे अपना प्रभाव डालते हैं। ऐसे ही हम सब अपने विचारों के अनुकूल आकाश से विचार-लहरों को आकर्षित करते हैं। प्रत्येक विचार जो मन में उत्पन्न होता है, वह अपना प्रभाव परमाणुओं पर डालता है—जल की तीव्र धारा के समान वेग से दौड़ता है। यदि हम एक विचार रोग उत्पन्न करनेवाला और दूसरा आरोग्य करनेवाला करें, तो दोनों का फल भिन्न भिन्न अवश्य होगा।

अच्छे विचारों से लाभ और बुरे विचारों से हानि होती है, इसका मनुष्यों को बहुत कम ज्ञान होता है। यदि सब मनुष्य ठीक रीति से विचार करने लगें, तो संसार सुख का भंडार बन जाय।

विचारों में रचना करने की शक्ति होती है, इससे मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, वैसी ही उसकी उन्नति या अवनति होती है। जैसे जिस विद्यार्थी का मन सदा उत्साह-पूर्ण रहता

है और जिसके मन में बड़ा होने की लालसा रहती है और जो बड़ा लेखक, बड़ा वक्ता, या बड़ा अधिकारी होना चाहता है, तथा जिसका मन सदा बड़ी वस्तुओं की रचना किया करता है, वह अवश्य बड़ा होता है। एक विद्वान् का कथन है कि जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है, परन्तु मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, ऐसा कहने मात्र से कार्य-सिद्धि नहीं होती, किन्तु जो उस कल्पनानुसार सदा विचार करता है और पूर्ण विश्वास रखता है, वही वैसा बन सकता है, क्योंकि रचना करने की सामर्थ्य उसी के विचारों में होती है। जैसे किसी लड़के के मन में सदा नौकरी करने के विचार हैं, तो वह आगे नौकरी ही करता है और जिसके मन में किसी उच्च काम करने के विचार होते हैं, वह अपने जीवन में अवश्य कोई उच्च कर्म ही में लगता है, और अनेक मनुष्यों का स्वामी बन जाता है। अपने विचारों का अच्छा या बुरा प्रभाव केवल अपने पर ही पड़कर समाप्त नहीं हो जाता, परन्तु इन विचारों का प्रभाव अपने साथ उठने बैठनेवालों पर भी पड़ता है। जिसका सूक्ष्म रीति से हमें ज्ञान भी नहीं होता। दृढचित्त होकर, अभ्यास करने पर पहले पहल साधारण रूप से एक विचार मन में उत्पन्न होता है, जिसका प्रभाव किसी मृदुग्राही चित्तवाले पर पड़ता है, जो उससे प्रभावित होने की दशा में हो।

विचार के बीज बोने में सदा सावधान रहो। दृढ विश्वास रखो कि सूर्य चाहे प्रकाश करना बद कर दे, परन्तु विचारों का परिणाम कभी निष्फल नहीं होता। इससे जब किसी साधन में लगो, तब बारंबार सिद्धि की शका से मन को चचल न करो।

यदि सब बातें तुम्हारे प्रतिकूल हों, तो भी सदाचार और आत्म-विश्वास से मत डिगो, मन को धैर्य के साथ साधन में लगाये रहो, जिससे कि वह एकाग्रता में नवीन-नवीन सिद्धि के उपायों का संग्रह करता रहे।

बाहरी रूप-रंग देखकर मनुष्य के आचार-विचार और स्वभाव का पता लगाया जा सकता है। जो मनुष्य सदाचारी है और जिसके विचार उत्तम हैं, उसका मुख देखने से ही सुन्दरता नहीं प्रतीत होती, किन्तु उसके चारों ओर तेज का पुञ्ज भी दिखाई पड़ेगा। कितनी शीघ्रता से लोग यह बात बता देते हैं, कि अमुक व्यक्ति विद्वान् है और अमुक मूर्ख है और अमुक अच्छा है, अमुक बुरा है। कारण यह है कि मनुष्य के शरीर का रोम-रोम उसके विचारों के प्रभाव से व्याप्त होता है। उसकी प्रत्येक बात से पहिराव से, चाल-चलन, बोली, लिखावट और उसके नित्य के जीवन-व्यापार से यह बात टपकती रहती है।

एक विद्वान् ने यहाँ तक कहा है कि टाइप से छपे हुए लेख से मैं हाथ की लिखी कापी अच्छी मानता हूँ। इससे यह पता चलता है कि लेखक कैसा है, बुद्धिमान् है या मूर्ख। एक पुस्तक-विक्रेता अपने नौकरों से कह दिया करता था कि अमुक मनुष्य जो आ रहा है, वह अमुक पुस्तक या अमुक विषय की पुस्तक माँगेगा। उसके इस कथन में प्रायः भूल भी होती थी। उसके मित्र इस बात से बहुत प्रसन्न रहते थे। इसका कारण यह था कि ग्राहक का रूप-रंग, चाल-ढाल, हाथ-पैर, पहनावा आदि को देखकर तत्काल पहचान करने की शक्ति उनमें थी।

जो मनुष्य उपर्युक्त लक्षणों को संपादन करना चाहता है,

उसे सत्-असत विचारों का प्रभाव कितना और कैसा पड़ता है, इस बात पर भली-भाँति विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि जो मनुष्य अपने जीवन में झूठ, कपट, छल, और स्वार्थपरता को ही सफलता का साधन समझता है, उसे नाना प्रकार के दुःख और क्लेश उठाने पड़ते हैं। वह मनुष्य किंचित भी बल और शक्ति को बढ़ा नहीं सकता और न कुछ सुख और शांति का उपभोग कर सकता है।

जो मनुष्य भलाई की शक्ति को नहीं मानते और अपने जीवन में प्रतिदिन के कार्य-व्यवहार में बुराई की शक्ति को ही स्वीकार करते हैं, वास्तव में वे ही नास्तिक हैं। विश्वास से मनुष्य को ऐसा भारी साहस होता है, कि उसके द्वारा उसके जीवन में सपूर्ण कष्ट और निराशाएँ, जो स्वार्थ के द्वारा उत्पन्न होती हैं, दूर हो जाती हैं। निश्चय से विजय प्राप्त होती है। जो मनुष्य जीवन की आकस्मिक घटनाओं के कारण क्रोध, शोक, चिन्ता, निराशा, भय आदि में पड़ जाते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए कि धार्मिक श्रद्धा और तत्त्व-ज्ञान के होते हुए भी उनमें अभी दृढ विश्वास की कमी है। कारण यह कि जहाँ विश्वास और धैर्य है, वहीं पर बल और दृढता होती है।

जिस मनुष्य को दृढ विश्वास होता है, वह कष्टों के आने पर किंचित भी भयभीत नहीं होता। चाहे जितनी विपत्तियाँ आवें, वह कभी हताश नहीं होता। इससे जो प्रकृति के नियमों को समझना चाहता है और मुक्ति के आनन्द का उपभोग करना चाहता है, उसे यह जान लेना चाहिए कि अपने जीवन में वास्तविक कोई विकार नहीं है, किंतु अज्ञानवश सब विकार दुःख दायी होते हैं।

ससार-चक्र में कोई भी विकार सदा सर्वदा से नहीं है। हममें अनत शक्तियाँ विद्यमान हैं। हम अपने मन की उस नैतिक सीमा तक पहुँच सकते हैं, जहाँ विकार उसको स्पर्श भी नहीं कर सकते।

मनुष्य अपना आप ही शत्रु है, जो काम से, क्रोध से, घृणा से, लोभसे, द्वेषसे, जिह्वा की लोलुपता से और भोग विलास से अपना नाश आप करता है, परन्तु दु ख का कारण ससार को समझकर ससार को ही दोषी ठहराता है, यह उसकी मूर्खता है। ससार का इसमें कुछ भी दोष नहीं है। दोष तो स्वय उसी का है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने विचारों के बल से चाहे जैसी उन्नति कर सकता है। विचारों की शक्ति एक बार मनुष्य के समझ में आ जानी चाहिए। ससार में जो लोग दु ख दुरूह दलदल में फँसे हुए हैं, यह उनके विचारों का ही परिणाम है। जो कोई भी दूसरों की हानि करके स्वय सुख चाहता है, वह अपने ही अर्थ दु खों का बीज बोता है।

शरीर पर विचारों का प्रभाव

अब यह देखना चाहिए कि शरीर पर विचारों का प्रभाव क्या पड़ता है। विचार मन से बाहर होते ही चित्त पर अपना संस्कार रूप चित्र छोड़ जाते हैं। ऐसे अनेक चित्र, गुप्त मन में रहते हैं। समय-समय पर अपना फल देते हैं। अच्छे विचार धन, यौवन, जीवन, आरोग्य की वृद्धि करते हैं और बुरे विचार धन, जीवन, आरोग्य का नाश करते हैं।

-- बुरे विचारों से रक्त में एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है। वह विष शरीर के जिस भाग से बाहर निकलता है, उसे रोग कहते हैं।

क्रोध से एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है। क्रोध में काट खाने से, जिसे काटा है उसकी मृत्यु तक हो जाती है। स्त्रियों को तो यह साधारण अनुभव होता है कि क्रोध में दूध पिलाने से बच्चा बीमार हो जाता है।

घृणा और स्वार्थ के विचारों से हृद्रोग होता है, क्योंकि उसका प्रभाव हृदय पर पड़ता है। धन-नाश के विचारों से निर्बलता, क्षय, मूत्राशय-सबंधी रोग उत्पन्न होते हैं। भय और दरिद्रता के विचारों से अजीर्ण तथा मंदाग्नि होती है। ऐसे अनेक रोग बुरे विचारों से उत्पन्न होते हैं।

अच्छे विचारों से रोगों का नाश होता है। अच्छे विचारों के

लक्षण पहले कह आये हैं, इसलिए बारबार लिखना केवल पुस्तक का कलेवर बढाना है।

रामकृष्ण परमहंस, मोहम्मद, खीष्ट आदि महापुरुषों के समयानुकूल जो अच्छे विचार अपेक्षित थे, वैसे विचार मनुष्य को निरंतर करना योग्य है। उन्हीं से उन्नति होती है। प्रेम, परोपकार, दया, दान और ईश्वर-चिंतन-रूपी विचारों से मनुष्य शरीर के समस्त प्राण कोष्ठों को नवजीवन प्राप्त होता है। इससे सदा अपने मन में अच्छे विचारों को ही स्थान देना चाहिए।

शारीरिक रोगों का मुख्य कारण हमारे अशुद्ध विचार ही हैं। यदि शरीर की रक्षा और आरोग्यता की इच्छा है, तो अपने मन में सदा शुद्ध और पवित्र विचारों को आने देना चाहिए। प्रोफेसर एलमरगेटस ने वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा यह सिद्ध किया है कि भय, चिंता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेप और उदासीनता से पसीने में थूक में, श्वास में, रक्त में विप उत्पन्न होता है और प्रेम, दया, सन्तोप, आनंद, तथा प्रसन्नता, आरोग्यता के विचारों से आरोग्यता और बलवान् बनानेवाले तत्व उत्पन्न होते हैं। ऐसे ही बच्चों की माँ या धाय के क्रोधित होकर दूध पिलाने से उसका दूध विषाक्त होकर बच्चे को मूर्च्छा आकर और मृत्यु तक होती हुई देखी गई है, अथवा रोगी तो वह अवश्य हो जाता है।

विचारों का प्रभाव हमारे शारीरिक संगठन पर बहुत पड़ता है। निश्चित दृढ और आशायुक्त विचारों से हमारा मुख दमकने लगता है तथा हमारे सम्पूर्ण कार्य सजीव प्रतीत होते हैं। निराशा के विचार से हमारा मुख मलिन हो जाता है और शरीर का ह्रास होने लगता है, अर्थात्—शरीर भी मलिन और विरूप-

सा प्रतीत होने लगता है। विशेष प्रकार के विशेष विचारों से विशेष-विशेष प्रभाव पड़ने का वर्णन करते हुए एक विद्वान् का कथन है कि क्रोध, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, शोक, लोभादि जितने प्रकार के विचार होते हैं, उनमें केवल मानसिक दशा में ही निर्बलता और गड़बड़ नहीं मचती, किन्तु शरीर पर भी वैसा ही बुरा प्रभाव पड़ता है। यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि ऐसे विचारों से शरीर में विष उत्पन्न होता है। रक्त-प्रवाह में रुकावट हो जाती है और रक्त भी विकृत हो जाता है। जिससे रक्त में पोषण शक्ति भी कम हो जाती है और शारीरिक सर्व कार्यों में शिथिलता आ जाती है। विश्वास, आशा, प्रेम, क्षमा, आनन्द तथा शान्ति के भाव से मन में स्फूर्ति उत्पन्न होती है, रक्त प्रवाह भी यथोचित होकर समस्त शरीर को उत्क्रान्त करता है, जिससे मन प्रसन्न तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। मानसिक दशा के गिर जाने से सब रोग होते हैं। अति स्त्री-प्रसङ्ग से, प्राणवाहिनी नाड़ियों के निर्बल हो जाने पर प्राण-शक्ति पहुँचाने में रुकावट आ जाती है। इससे लकवा हो जाता है। वैद्य लोग कहते हैं कि यह रोग प्रायः अति स्त्री-प्रसंग से ही होता है।

निराशा और चिंता के विचारों से आँतों का रोग होता है। घृणा तथा बदला लेने की इच्छा और भय चिंता से मन निरंतर एक ही विषय पर लगा रहने के कारण मस्तिष्क को हानि पहुँच कर वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

शोक घुन के समान है। जैसे घुन चने को भीतर से खाकर थोथा कर देता है, वैसे ही शोक भी शारीरिक बल को नष्ट कर शरीर का ढाँचा मात्र बना देता है।

इसी प्रकार बुरे विचारों से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। आरोग्य इच्छुकों को निरन्तर ऐसे विचारों से बचने का दृढ प्रयत्न करना चाहिए। आरोग्यता के विचार आरोग्यता को और रोगों के विचार रोगों को बढाते हैं। धन के विचार धन को और दरिद्रता के विचार दरिद्रता को बढ़ाते हैं। बल, साहस, उत्साह के विचार बल, साहस, उत्साह को बढ़ाते हैं तथा निर्बलता, दीनता, चिंता के विचार से निर्बलता, दीनता चिन्ता बढती है, इसलिए मैं रोगी हूँ, दीन हूँ, दुखी हूँ या बलहीन हूँ, मेरा कोई सहायक नहीं है, मैं मर जाऊँगा, मैं वृद्ध हो जाऊँगा—ऐसे मन को गिराने-वाले विचारों को कभी मन में न आने देना चाहिए, क्योंकि जिनका मन गिर जाता है, वे जीवन को किसी शाखा में सिद्धि या सफलता नहीं प्राप्त कर सकते ; इसलिए ऐसो मन की गिरी अवस्था और बुरे विचरों को कदापि मन में न आने देना चाहिए। आशावान् और प्रसन्न मन शारीरिक स्वास्थ्य सुधार तथा वृद्धि में जितनी सहायता करता है, उतनी सहायता अन्य उपाय और औषधि आदि नहीं कर सकते, मन की प्रसन्नता से क्षुधा अच्छी लगती है। मल-मूत्र साफ होते हैं, शरीर बलवान् और सुन्दर होता है, तथा अप्रसन्नता से निर्बलता आदि सब रोग उत्पन्न होते हैं। इससे यदि जीवन सुखी सुरक्षित और आनन्दमय बनाना हो, तो शरीर के साथ मन को भी सुधारने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

उदर, मस्तिष्क और हृदय—इनसे ज्ञान-तन्तुओं का घनिष्ट संबंध होने के कारण वे मानसिक भावों के अनुसार कार्य करने लगते हैं। एक भाव से गालों पर पीलापन छा जाता

सा प्रतीत होने लगता है। विशेष प्रकार के विशेष विचारों से विशेष-विशेष प्रभाव पड़ने का वर्णन करते हुए एक विद्वान् का कथन है कि क्रोध, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, शोक, लोभादि जितने प्रकार के विचार होते हैं, उनमें केवल मानसिक दशा में ही निर्बलता और गड़बड़ नहीं मचती, किन्तु शरीर पर भी वैसा ही बुरा प्रभाव पड़ता है। यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि ऐसे विचारों से शरीर में विष उत्पन्न होता है। रक्त-प्रवाह में रुकावट हो जाती है और रक्त भी विकृत हो जाता है। जिससे रक्त में पोषण शक्ति भी कम हो जाती है और शारीरिक सर्व कार्यों में शिथिलता आ जाती है। विश्वास, आशा, प्रेम, क्षमा, आनन्द तथा शान्ति के भाव से मन में स्फूर्ति उत्पन्न होती है, रक्त प्रवाह भी यथोचित होकर समस्त शरीर को उत्क्रान्त करता है, जिससे मन प्रसन्न तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। मानसिक दशा के गिर जाने से सब रोग होते हैं। अति स्त्री-प्रसङ्ग से, प्राणवाहिनी नाड़ियों के निर्बल हो जाने पर प्राण-शक्ति पहुँचाने में रुकावट आ जाती है। इससे लकवा हो जाता है। वैद्य लोग कहते हैं कि यह रोग प्रायः अति स्त्री-प्रसंग से ही होता है।

निराशा और चिंता के विचारों से आँतों का रोग होता है। घृणा तथा बदला लेने की इच्छा और भय चिंता से मन निरंतर एक ही विषय पर लगा रहने के कारण मस्तिष्क को हानि पहुँच कर वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

शोक घुन के समान है। जैसे घुन चने को भीतर से खाकर थोथा कर देता है, वैसे ही शोक भी शारीरिक बल को नष्ट कर शरीर का ढाँचा मात्र बना देता है।

इसी प्रकार बुरे विचारों से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। आरोग्य इच्छुकों को निरन्तर ऐसे विचारों से बचने का दृढ़ प्रयत्न करना चाहिए। आरोग्यता के विचार आरोग्यता को और रोगों के विचार रोगों को बढाते हैं। धन के विचार धन को और दरिद्रता के विचार दरिद्रता को बढ़ाते हैं। बल, साहस, उत्साह के विचार बल, साहस, उत्साह को बढ़ाते हैं तथा निर्बलता, दीनता, चिंता के विचार से निर्बलता, दीनता चिन्ता बढती है, इसलिए मैं रोगी हूँ, दीन हूँ, दुखी हूँ या बलहीन हूँ, मेरा कोई सहायक नहीं है, मैं मर जाऊँगा, मैं वृद्ध हो जाऊँगा—ऐसे मन को गिराने-वाले विचारों को कभी मन में न आने देना चाहिए, क्योंकि जिनका मन गिर जाता है, वे जीवन की किसी शाखा में सिद्धि या सफलता नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिए ऐसी मन की गिरी अवस्था और बुरे विचरों को कदापि मन में न आने देना चाहिए। आशावान् और प्रसन्न मन शारीरिक स्वास्थ्य सुधार तथा वृद्धि में जितनी सहायता करता है, उतनी सहायता अन्य उपाय और औषधि आदि नहीं कर सकते, मन की प्रसन्नता से क्षुधा अच्छी लगती है। मल-मूत्र साफ होते हैं, शरीर बलवान् और सुन्दर होता है, तथा अप्रसन्नता से निर्बलता आदि सब रोग उत्पन्न होते हैं। इससे यदि जीवन सुखी सुरक्षित और आनन्दमय बनाना हो, तो शरीर के साथ मन को भी सुधारने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

उदर, मस्तिष्क और हृदय—इनसे ज्ञान-तंतुओं का घनिष्ट संबंध होने के कारण वे मानसिक भावों के अनुसार कार्य करने लगते हैं। एक भाव से गालों पर पीलापन छा जाता है और

दूसरे भाव से गालों पर लाली दमकने लगती है, इसलिए जिस से आरोग्य, बल, धन, बुद्धि, विद्या, तेज बढे और शरीर में, मन में प्रसन्नता प्राप्त हो, वैसे ही विचार हमें सदा करना चाहिए। परन्तु इसके लिए अपने विचारों पर निरंतर लक्ष्य रखना चाहिए

केवल मस्तिष्क ही विचारों का मुख्य स्थान नहीं है, किन्तु सब अवयव विचारों से पूर्ण हैं। हमारे सब जीव-कोष्ठ जब मिल कर काम करते हैं, तभी हमें सुख और शांति प्रतीत होती है। जब किसी अंग में रोग का चिह्न प्रतीत होता है, तब सब शरीर मलिन हो जाता है। इससे शरीर को हृष्ट-पुष्ट बलवान् बनाने के लिए वैसे ही विचार अपने मन में करना चाहिए। यदि किसी अंग में रोग हो, तो उसे रोग-रहित करने की कल्पना करो। ऐसा करने से उस अंग को आरोग्य बनाने में बड़ी सहायता मिलती है। उस रोगी अंग से वैसे बात करो कि जैसे दूसरे से बात करते हो। जब तुम रोगी अङ्ग को रोग-युक्त कल्पना करोगे, तब सब अङ्ग उसी कल्पनानुसार अपना कार्य करने लगेंगे और उस कल्पना नुसार आरोग्य होने के बदले रोग की और वृद्धि होगी। विचारों में रोग के दूर करने की बड़ी भारी शक्ति है, एक बार परीक्षा करके तो देखो, तुम्हारे आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा। जहाँ तुमने किसी रोगी अङ्ग की आरोग्य-रूप में कल्पना की कि वह अङ्ग इतनी तेजी से आरोग्य होने लगेगा, जितना और किसी औषधि से नहीं हो सकता।

तुम्हारे भले-बुरे विचारों का प्रभाव जैसा मन पर होता है, उसी के अनुसार सब अंगों की क्रिया चालू रहती है। आरोग्य-वर्द्धक विचारों से जीव-कोष्ठ आरोग्य निर्माण करते हैं और रोग-युक्त

भावों से रोगों को बढ़ाते हैं, ऐसे ही संसार की समस्त वस्तुओं को निर्माण करनेवाले मन की शक्तियों के सबंध में मनुष्य कितनी भूल कर रहे हैं, खेद की बात है।

पाश्चात्य देशों में मन के विषय में और मनुष्य के चालचलन सुधारने और अयोग्य प्रभावों को रोकने में मनोविज्ञान ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। खेद कि इतनी सच्ची और अलौकिक तथा अद्भुत, फल देनेवाली बात, अर्थात्—विचारों को हम किंचित भी काम में नहीं लाते, किन्तु अपने जीवन-सबंधी कार्यों को प्रारब्ध के भरोसे छोड़ देते हैं। विचरों की शक्ति का हम नित्य अनुभव करते हैं। तुम जो कुछ सुख-दु ख भोग रहे हो, उन सब की जड़ विचार ही है, इससे हमें दुखदायी विचारों को त्यागकर जिनसे हमारा जीवन सुधरे और सुखमय बने, उन विचारों को सदा-सर्वदा करते रहना चाहिए।

बहुत से वृद्धों को हम बलवान् और दीर्घ-जीवी देखते हैं, यह शक्ति उनमें कहाँ से आई? केवल अच्छे विचारों से। बहुत लोग ऐसे देखने में आते हैं, जो दूसरों का बुरा चिन्तन करते हैं, दूसरों से जलते हैं, उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जाता है। फिर जब उनके रोग का मुख्य कारण उन्हें बताया जाता है, और जब वे उसे समझकर अपने बुरे विचारों को ज्यों-ज्यों मन से निकालते जाते हैं, त्यों-त्यों उनका स्वास्थ्य बिना औषधि के शीघ्र सुधर जाता है, क्योंकि जिन बुरे विचारों को मन में आने से वे अति दु खी रहते थे, उनके निकल जाने से मन प्रसन्न रहने के कारण शीघ्र स्वास्थ्यलाभ होता है, क्योंकि मन की प्रसन्नता लाख औषधि की एक औषधि है।

जनक घटना से हृदय और मस्तिष्क के रोग उत्पन्न होते हैं।

विचार का प्रभाव हमारे शारीरिक संगठन पर बहुत पड़ता है। निश्चित दृढ तथा आशायुक्त विचारों से हमारा मुख दमकने लगता है और हमारे सपूर्ण कार्य सजीव प्रतीत होते हैं। निराशा के विचार से हमारा मुख मलिन हो जाता है और शरीर का ह्रास होने लगता है, अर्थात्—शरीर भी मलिन और विरूप सा प्रतीत होता है।

डाक्टर लेटसन का कथन है कि एक बलवान् हृष्ट-पुष्ट उत्साही सभ्य पुरुष घूमघाम के थका हुआ होटल में आया, उस समय उसे जोरों की भूख लगी थी। उसी समय उसके नाम का एक तार आया, उसमें शोकजनक समाचार थे। उसे पढकर वह बिल्कुल सुस्त और उदास हो गया। उसकी भूख न जाने कहाँ चली गई। उसके मित्रों ने उसे जबरदस्ती भोजन कराया, तो उसका यह परिणाम हुआ कि वह दो घटे में मर गया। इस बात से शिक्षा होनी चाहिए कि एक नीरोग, स्वस्थ, मनुष्य को अतिशय भूख लगी थी और जिसका चित्त भी भोजनालय पर था, उस समय रक्त का प्रवाह जो आमाशय और पाचन के अवयवों की की ओर था—यह शोक-समाचार आते ही मस्तिष्क की ओर वेग से चलने लगा। उसकी मांस-पेशियाँ और पुट्ठे निर्बल पड़ गये। अन्त में तीव्र शोक से रक्त विषाक्त होकर उसकी मृत्यु ही हो गई।

इससे आत्म-विद्या के साधक को गरिष्ठ, भारी वस्तु को त्यागना चाहिए। अति चिकना-चुपड़ा त्याग न हो सके, तो लोलुपता का तो अवश्य त्याग करना चाहिए, क्योंकि अति चिकना

तथा गरिष्ट पदार्थ दिल और मस्तिष्क को हानिकारक होता है। नसों की तथा आँखों की बीमारी चिकने तथा गरिष्ट भोजियों को ही होती है।

शरीर पर मन का बड़ा प्रभाव पड़ता है। शरीर ऐसा कोमल आकर्षण-यन्त्र है कि जिस विकार के विचार मन में आते हैं, उनके अनुरूप प्रवृत्ति तत्काल करने लगता है। विचार भले हों या बुरे, उनके अनुसार ही शरीर पर प्रभाव पड़ता है, इससे अपने विचारों को ठीक करो। बुरे विचारों से क्षण-भर में शरीर-रूपी कल बिगड़ जाती है और मनुष्य इस लोक परलोक दोनों का घातक हो जाता है।

'न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः। दुष्टाशय. दुष्ट रति. प्रगष्टो व्याधितो यथा।' अर्थात्—बुरी इच्छा और बुरे विचारवाले को तीर्थयात्रा, दान, व्रत, तप, सन्यास बचा नहीं सकते, जैसे रोगी को अवश्य मृत्यु प्राप्त होती है। इससे उत्तम विचार करना चाहिए।

जब हम पवित्र आरोग्य-दायक और सत्वमय विचारों को सोचने लगते हैं, तब हमें अपने मन तथा शरीर पर उसका प्रभाव मालूम पड़ता है। क्लेश या पीड़ाएँ कम हो जाती हैं। मांस, नसें नवीन विचारों के अनुरूप बन जाती हैं। हमारे विचार ही एक वस्तु हैं, वे अपने को मांस और रक्त में परिणत कर देते हैं। शरीर विधान क्रम में प्रत्येक नसों में, विचार का प्रत्यक्षीकरण है। इस प्रकार शरीर मन का पूरा पूरा प्रतिरूप है और मन पर पड़नेवाला प्रत्येक चिह्न किसी न-किसी रूप में उसके बाहरी शरीर पर पड़े बिना नहीं रह सकता। शरीर, मांस, रक्त में परिणत

सारथी-द्वारा इष्ट स्थान-रूपी ईश्वर-प्राप्ति अथवा स्वास्थ्य रूपी फल-प्राप्ति अवश्य होगी।

आरोग्यता मनुष्य का स्वाभाविक जीवन है, परन्तु केवल शरीर की आरोग्यता पूर्ण स्वास्थ्य नहीं, किन्तु शरीर और मन तथा आत्मा तीनों की स्वस्थता ही पूर्ण आरोग्यता है।

प्रत्येक मनुष्य यह नहीं जानता कि किस उपाय से ये तीनों आरोग्य रखे जा सकते हैं। जो इस बात को जानते हैं, वे बिना औषधि के अपने को आरोग्य रख सकते हैं।

वर्तमान काल की खोज से पता लगता है, कि रोगों की जड़ शरीर में नहीं; किन्तु मन और भावों में है। जब तक इन दोनों की शुद्धि न की जायगी, तब तक रोग कदापि निर्मूल न हो सकेंगे। रोग का सबसे बड़ा कारण रोगों की चर्चा करना है और सुनना है, इससे रोगों के विचार मन में पुष्ट होते रहते हैं और शरीर पर उनका धीरे-धीरे प्रभाव पड़ कर शरीर निर्बल हो जाता है, इससे सदा आरोग्यता की चर्चा करो। आरोग्य मनुष्यों का संग और आरोग्यता के विचार आरोग्यता बढानेवाले होते हैं।

संसार की कोई वस्तु दुःखदायक नहीं है, इस वाक्य का निरन्तर जप करो। जब तक इसका प्रभाव तुम्हारे मन पर जम न जाय। आरोग्यता के लिए बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं, आरोग्यता और समग्र सुख विचारों की शक्ति के ज्ञान और प्रभाव से अपनेआप आकर्षित और प्राप्त हो सकते हैं। हम अपनी अज्ञानता तथा बुरे विचारों से ही क्लेश उठाते, और दुःखी होते हैं और दूसरों को दुःखी करते हैं।

एक स्त्री सदा रोग का ही विचार और भावना करती थी।

थोड़ा सामान्य रोग होने पर भी उसे बढ़ा कर कहा करती थी। मैं रोगी हूँ, यह दिखाने के लिए बार-बार उद्योग करती थी, क्योंकि उसका यह स्वभाव पड़ गया था, इससे उसके मुहल्ले में भी कोई वैद्य आता, तो उसे नाड़ी दिखाती और वृद्धों के सामने रोया करती। वे भोले-भाले मनुष्य उसके दुःख में सहानुभूति दिखलाते, इससे उसको सतोष होता और अपने कल्पित दुःख की बातें करने में उसे सुख-सा मिलता। ऐसा करते-करते उसका यह स्वभाव ही पड़ गया। थोड़े-से रोग को वह बढ़ाकर कहती, मार्ग चलने में बहुत थकावट दिखाती, मुँह बनाना, धीरे-धीरे चलना इत्यादि रोगी के चिह्न दिखाती, किन्तु ये सब बातें किसी रोग के कारण न थीं, वरन् मन की निर्बलता से ही उसका ऐसा स्वभाव पड़ गया था। परन्तु, इसका क्या परिणाम होगा, इसकी उसे खबर न थी। फिर उसके लड़के भी सग-दोष से उसी स्वभाव के हुए। इससे उसको बुढ़ापे में बहुत दुःख भोगना पड़ा। उसका प्रभाव केवल उसकी सतान पर ही नहीं पड़ा, किन्तु उस के पड़ोसियों पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा, क्योंकि स्त्रियों को नकल करने का बड़ा भारी चाव होता है। ऐसे ही महामारी के रोग से जितने मनुष्य मरते हैं, उससे अधिक महामारी के भय से मरते हैं, अतः सज्जनो! बुरे विचारों से बड़ी भारी हानि होती है, इससे कभी किसी प्रकार का बुरा विचार मन में न आने दो, इस बात का पूरा-पूरा ध्यान सदा रखो।

जो सदा दुःख के विचार करते हैं और कभी आनन्द के विचारों की एक रेखा भी नहीं देखते, वे अपने शरीर का नाड़ि-जाल वैसा ही बनाते हैं; क्योंकि नाड़ि जाल उन्हीं विचारों से

बनता है, इससे विचारों का अच्छा-बुरा प्रभाव पूर्णतया नाड़ियों पर निरंतर पड़ता रहता है। यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि शरीर की सब पीड़ाओं का कारण मन ही में है। सुख दुःख का अनुभव करना, विचार करना और कार्य करना, ये तीनों काम मन ही करता है। शरीर केवल निर्जीव यंत्र और आत्मा का गृह है। आत्मा के होने से ही काम कर सकता है, नहीं तो मिट्टी का ढेर है। यदि तुम आरोग्य चाहते हो, तो आरोग्य औषध की बोतलों से नहीं मिल सकता है। बाहर घूमना, घर में रहने से उत्तम है; परन्तु सबका कारण पूर्व किये हुए विचार ही हैं। मन के विकारों का प्रभाव शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों पर बहुत भयंकर रूप में पड़ता है। जैसे क्रोध करने से भूख मारी जाती है, रक्त प्रवाह अव्यवस्थित हो जाता है और सारे शरीर में विकार फूट निकलता है, शोक और चिंता से शरीर का नाश हो जाता है, मधुप्रमेह का कारण विशेषतः यही है, अर्थात्—क्रोध और चिंता ही है। जो कुछ होता है वह विचार-शक्ति की शिथिलता से ही होता है, इससे विचार-शक्ति को बलवान् बनाना चाहिए। भय, चिंता आदि वृत्तियों का वेग चित्त को अस्थिर कर देता है, और हृदय की धड़कन को तीव्र करता है, जिससे नाड़ी-नाड़ी में विकार उत्पन्न हो जाता है। मन को एक स्थान पर लगाने के लिए श्रद्धा ही मुख्य उपाय है और भय तथा क्लेशों से बचने का उपाय अन्तर्यामी परमात्मा की शरण जाना है।

यदि हृदय अनियमित रीति से धड़कता है, तो इसी से शक्ति क्षीण होती है। जैसे शोक और भय स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं, वैसे ही प्रसन्नता, निर्भयता और उत्साह चिरजीवन को बढ़ाते हैं

और नियमित रीति से हृदय के धड़कने के चिह्न हैं। यदि कोई विरोधी विचार मन में उत्पन्न हो, तो उसे तत्काल निकाल कर मन को श्रद्धा और उत्तम विचारों में प्रवृत्त करना चाहिए। इस प्रकार मन को अपने वश में करने से अपनी शक्तियों को शीघ्र ही जागृत कर सकते हो।

हमारे प्रत्येक विचार की शुद्धता और अशुद्धता का निर्णय इसी से करना चाहिए कि हमारे रक्त की गति पर उसका क्या प्रभवा पड़ रहा है। जिसका जैसा कारण होगा, उसका कार्य भी वैसा ही होगा। ससार में कार्य-कारण का नियम बड़ा प्रामाणिक है।

रक्त की गति ठीक रहने से शरीर का स्वास्थ्य ठीक समझना चाहिए, क्योंकि जिस भाग में रोग होता है, उस भाग का रक्त बिगड़ जाता है। आकस्मिक शोक, भय, हर्ष तथा साहस के कारण हृदय की धड़कन में भेद हो जाता है। कभी-कभी धड़कन बंद भी हो जाती है।

यदि तुम क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, या अन्य किसी वासना के अधीन रहते हो और उत्तम स्वास्थ्य की इच्छा करते हो, तो यह असम्भव है। ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि तुम नीच विचार करो और तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहे।

आरोग्य रहने के सरल साधन

१—सदा प्रसन्न रहो। तुम्हारे हृदय से आनन्द को चहुँ ओर फैलने दो, जिससे तुम्हारे साथ रहनेवाले आनन्द में रँग जायँ। चिड़चिड़ापन और उदासीनता से मुख की आकृति बिगड़ जाती

है, पाचनशक्ति बिगड़ जाती है। स्वास्थ्य और सौन्दर्य का नाश हो जाता है, इससे हँसने का प्रयत्न करो। हास्य से आयु की वृद्धि होती है, इससे सदा आनंद में निमग्न रहा करो।

२—दोष-दृष्टि तथा अहंकार का त्याग करो, गुण-दर्शी बनो और प्रत्येक वस्तु में शुभ देखना सीखो।

३—सब प्रकार की सफलता आत्म-विश्वास पर निर्भर है। सदा अपने मन को पवित्र और उत्तम लक्षणवान् बनाओ। दूसरों के बुरे विचारों को कभी ग्रहण न करो। सत्यता, दृढ़ता, पवित्रता और प्रसन्नता के विचारों से शरीर और मन में बल बढ़ता है।

४—मौन धारण करो। व्यर्थ बकवाद मत करो। आत्म प्रशंसा का त्याग करो। शांति ही महान् पुरुषों का उत्तम लक्षण है। प्रत्येक कार्य शांति से करो, अपनी इच्छाओं को अपने अधीन करो। कभी उत्तेजित न हो, इससे विचार-शक्ति मंद हो जाती है। जो शांत एकाग्रचित्त से प्रति दिन के कार्यों को करता है, वह उन्हें अल्प काल में और अल्प परिश्रम से कर सकता है। और उसका सारा दिन आनन्द में व्यतीत होता है। जरा-सी बात में उत्तेजित होने से मन की शांति भंग होकर शरीर को बड़ी हानि पहुँचती और अल्प आयु में मृत्यु हो जाती है।

५—सब से प्रेम-पूर्वक व्यवहार करो। ईश्वर सब प्राणियों में समान भाव से विद्यमान् है—इस बात पर श्रद्धा करो। मैं सब कुछ कर सकता हूँ—यह विश्वास रखो। ऐसे विचार से तुम्हारे शरीर में पुष्टि तथा बल की वृद्धि बनी रहेगी, क्योंकि तुम जैसी भावना निरन्तर करोगे, वैसे ही बन जाओगे। मानस-शास्त्र का

नियम है कि जो बात बारम्बार मन में उत्पन्न हो, वह विश्वास-रूप में बदल जाती है और अपने मन तथा शरीर के विषय में जैसा जिसका विश्वास होता है, वैसे ही लक्षण प्रकट होने लगते हैं—'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'

सत्यता ही प्रसन्नता की जननी है। सचाई से कभी भय नहीं होता।

मनका प्रभाव शरीर के सब अंगों पर बहुत भयकर रूप में पड़ता है। जैसे क्रोध करने से भूख मारी जाती है, रक्त-प्रवाह अव्यवस्थित हो जाता है, वैसे ही शोक और चिंता के विचारों से शरीर का नाश हो जाता है और मधुप्रमेह भी प्रायः क्रोध और चिंता ही से होता है। जो कुछ होता है, वह सकल्प-शक्ति की शिथिलता से ही होता है, इसलिए सकल्प-शक्ति को सदा बलवान् बनाना चाहिए।

कल्पना-शक्ति अपूर्व है। कल्पना में आत्म शक्ति ओत-प्रोत भरी हुई है। प्रत्येक कल्पना में बिजली के समान प्रचड शक्ति विद्यमान है। तुम चाहे जैसी भयकर स्थिति में हो, तथापि अपने जीवन की अधिकाधिक उन्नति की कल्पना करो।

तुम्हारे ध्यान में आ सके, ऐसे 'सर्वोत्कृष्ट भावों को हृदय में धारण करो, केवल दृढ़ कल्पना-शक्ति के प्रभाव से ही तुम अद्-भुत परिवर्तन कर सकोगे।

जब तुम्हारे भोजन का समय हो और तुम्हें क्षुधा न लगी हो, तब यह भावना करो कि हमें सारा दिन उपवास करने से बड़ी जोर की भूख लगती है, यदि इसकी यथार्थ कल्पना करो, तो तुम्हें बड़ी जोर का भूख लगेगी। यह कल्पना १० मिनट तक

हास्य का विकास मनुष्य-जीवन में बहुत छोटी अवस्था में ही होने लगता है। बच्चा इक्कीस दिन बाद, मुसकिराने लगता है, और तीन मास बाद हँसने लगता है। हास्य के पहले रोने का विकास होता है। रोने से बच्चे के रोग का अनुमान होता है। रोग के पीछे बच्चे की हँसी से आरोग्यता का अनुमान होता है। विशेष अनुभव की बात यह है कि बुद्धू या बोदे बच्चे की अपेक्षा बुद्धिमान् बच्चे अधिक मुसकिराते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि हँसने से अधिक लाभदायक औषधि मिलना असम्भव नहीं, किन्तु कठिन तो अवश्य है। प्रतिदिन प्रातः और सायं काल किसी ऐसी जगह खड़े हो, जहाँ सहज ही में चित्त प्रसन्न हो सकता हो, तदनंतर मन ही-मन थोड़ा मुसकिराओ फिर उस मुसकिराहट को हँसी के रूप में प्रकट करो। फिर जोर से हँसो, खूब हँसो, यहाँ तक हँसो कि लोट-पोट हो जाओ। अधिक नहीं, केवल ५ मिनट के लिए यह व्यायाम करो। जिस समय तुम्हारा मन उदास या खिन्न हो, भ्रमित हो, उसी समय इस औषधि का सेवन करो। इससे तत्काल बिजली का-सा प्रभाव प्रतीत होगा। इस औषधि की महत्ता, उपयोगिता और प्रभाव सेवन करने से ही मालूम होगा, केवल पढ़ने मात्र से नहीं। निम्न दो उदाहरणों से तुमको दृढ़ विश्वास हो जायगा कि हास्य का कैसा विलक्षण प्रभाव होता है। पादरी वजेन साहब का कथन है कि सृष्टि के सब प्राणियों में मनुष्य-जाति ही ऐसी है, जो हँसना जानती है, अन्य प्राणी इस प्रकृतिदत्त प्रसाद से वञ्चित हैं।

भौतिक विज्ञान बताता है कि रोग-निवारणार्थ हास्य भाव

एक अचूक निशाना है। यह हृदय की वृद्धि और विकास का कारण है। फेफड़ों को फैलाता है और उसके अंतरंग परदों को पुष्ट करता है। एक पादरी साहब का प्रत्यक्ष अनुभव है कि एक मनुष्य, जिसे हँसने की टेव थी, वह सदा सर्वकाल हँसता ही रहता था। उसके मरने के बाद उसके यकृत की परीक्षा की गई, तो उसका यकृत इतना कठोर पाया गया कि सोंटे के प्रहार से भी न फटा। इससे पाठकों को विचार करना चाहिए कि हास्य-भाव कितना उपयोगी और आवश्यक है।

दूसरा उदाहरण—बंदर ने दवा पी और मालिक को आराम हो गया।

एक मनुष्य को अकस्मात् ज्वर आ गया। वैद्य ने उसे औषधि पीने को दी। रोगी का नौकर औषधि गिलास में डाल के किसी काम को चला गया। उसी समय उसका एक पालतू बंदर आकर उसे सूँघने लगा और सूँघते सूँघते उठाकर पी गया। पीते ही उसके मुँह का स्वाद बिगड़ गया और लगा हाथ-पैर पीटने यह उस बंदर ने उस गिलास को जमीन पर दे मारा और अपने मालिक की ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देखने लगा, मानो उसके मालिक ने उसे पिलाया हो। उस बंदर की इस अज्ञानता पर उसके मालिक को इतनी हँसी आई कि हँसते हँसते लोट-पोट हो गया। घरवालों ने हँसने का कारण पूछा, परन्तु जब वह उसे कहने लगता, तो तुरन्त उसे हँसी आ जाती। इस प्रकार आध घंटे तक वह हँसता रहा। उसे आश्चर्य हुआ कि उसी समय उसका ज्वर विशेष उतर गया। इससे प्रकट है कि हँसी का कितना महत्त्व है।

अतः हँसो, हँसो, खूब हँसो। इस कार्य से प्राकृतिक आरोग्यता में बड़ी भारी सहायता होगी।

प्रत्येक मनुष्य का जीवन यशस्वी होने के लिए हास्य अत्यन्त आवश्यक कार्य है। कठोर, रुक्षवृत्ति धारण करने के कारण मनुष्य अपने कार्य में असफल होता है और आस पास के वायुमडल को दूषित करके स्वयं अप्रिय हो जाता, एव अन्य मनुष्यों को भी अप्रिय बना देता है।

इस हास्य-विनोद-चिकित्सा का घर-घर में प्रचार करो और बिना औषधि के नीरोगी बनो, परन्तु वह हास्य-विनोद निर्दोष और सात्विक होना चाहिए। कुचेष्टा, असूया, निन्दा, ईर्ष्या आदि विकारों से कलुषित न होना चाहिए।

डाक्टर एएडरसन का कथन है कि औषधोपचार की नाईं आनन्द-वृत्ति से शारीरिक जीव कोष्ठों को चेतना-शक्ति और नव जीवन शक्ति मिलती है और उसका परिणाम शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग पर होता है। उससे नेत्र सतेज होते हैं, चेहरा मनोहर बनता है, चाल सुहावनी होती है और शरीर की जीवनाधार शक्ति का विकास होता है। शरीर में रक्त-सचालन पूर्ण रीति से होता है और आरोग्य बढता है, तथा भिन्न-भिन्न रोगों के बीज नष्ट होते हैं।

मद मुसक्यान अनेक रोगों की औषधि है, यह डाक्टर एड-विन मारेल का मत है। मुसक्यान आत्मरूप सूर्य का मुखारविंद पर उदय है। यह प्रसन्नता का पुष्प है और शक्ति का झरना है। मुसकिराने का स्वभाव रखने से ही स्वभाव पड़ जाता है और वह स्वभाव मिलनेवालों को भी मुसकिराने में लगाता है। इससे मुसकिराते रहो, सारा संसार तुम्हारे साथ मुसकिरायेगा।

इससे तुम जहाँ रहो, वहाँ मुसकिराते ही रहो, हँसते ही रहो, यही तुम्हें अपने मन को शिक्षा देना चाहिए।

खाते हुए भी मुसकिराओ, भोजन अधिक गुणकारी और बलवर्द्धक होगा। श्वास लेते हुए मुसकिराने से, वह श्वास तुम्हारे प्राणों को अधिक पुष्टि देगा। कसरत करते हुए मुसकिराने से वह कसरत नित्य की अपेक्षा अधिक बलवर्द्धक होगी। प्रत्येक काम करते हुए मुसकिराते रहो, तो वही काम बहुत अच्छा बनेगा। यह आत्मिक उन्नति का सरल मार्ग है, और शारीरिक तथा मानसिक बल का अटूट भंडार है। प्रातः निद्रा से प्रसन्नता लिये हुए उठो और मुख पर प्रसन्नता दर्शाओ। जो मिले उससे मुसकिराते हुए बोलो। प्रत्येक व्यवहार में प्रसन्नता रखो, जिससे मिलनेवाले के सुख की वृद्धि हो।

जरा आनन्दित रहकर देखो कि क्या फल होता है। आनन्द में रहने से क्या तुम किसी का कुछ चुरा लेते हो? अथवा तुम्हारे उदास रहने से किसी का कुछ लाभ हो सकता है? जब तुम सदा उदास रहते थे, तब सब लोग तुमसे मित्रता करने की इच्छा रखते थे, या तुम्हारे उदास रहने से और कठिनता तथा रोग का रोना रोने से संसार को सुखी रहने में सुख वा कुछ सहायता मिल सकती है? इन प्रश्नों का उत्तर तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है। इनका विचार करके जो उचित हो सो करो। हँसो, हँसो, तुम्हारे साथ सारा जगत् हँसने लगेगा, परन्तु यदि रोओगे तो, तुम्हे अकेले ही रोना पडेगा, क्योंकि संसार में सबको आनन्द की आवश्यकता है, शोक तो उसके पास अटूट भरा हुआ है।

यदि तुम प्रसन्न रहना चाहते हो, तो तुमसे नीचे दर्जे के

लोगों को देखो कि तुम उनसे कितनी अच्छी दशा में हो। इसका विचार कर परमात्मा को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हें कितनी अच्छी दशा में रखा है।

विद्वान् शेखसादी इतने दरिद्र थे कि जूता भी नहीं ले सकते थे, और सदा नंगे पैर रहने से एक बार मार्ग में ठोकर लगने के कारण अपनी दरिद्रता पर उन्हें बड़ा खेद हुआ। इतने में एक मनुष्य को देखा कि रोग-वश उसके दोनों पैर बे काम हो गये हैं और वह अपने कूले के सहारे चलता है। उसे देख तत्काल अपनी आरोग्यता पर उन्होंने परमात्मा को धन्यवाद देकर अपने अनुचित विचारों पर पश्चात्ताप किया कि हमसे नीची दशा में असंख्य मनुष्य संसार में हैं। उन्हें देखकर अपने को कभी अधीर और अप्रसन्न मत होने दो, किन्तु सदा प्रसन्न रहो। हँसते रहो, तो दिनोंदिन तुम्हारी दशा उन्नत होती जायगी।

उदासी और अप्रसन्नता से बचने का दूसरा उपाय यही है कि किसी को अप्रसन्न मत करो। यदि किसी से झगड़ा हो जाय, और वह तुमसे बात न करे, तो तुम उसे देखकर मुँह न मोड़ो, किंतु जब वह कहीं मार्ग में मिल जाय, तो हँसकर उसे गले लगाओ। या उससे क्षमा माँगो, परन्तु यह न समझो कि वह हमें डरपोक जानेगा, क्योंकि मूर्ख ही ऐसा समझते हैं। तुम्हारे ऐसे व्यवहार से उसका हृदय गद्‌गद् और प्रेम पूर्ण हो जायगा और जन्म भर के लिए वह तुम्हारा सच्चा मित्र बन जायगा—

करो न रिपुता काहु ते, सबके रहिए मीत।
जासे मन प्रफुल्लित रहे, रहे न रिपु की भीत॥

विचार-परिवर्तन

जीवन सुधार के अर्थ शांति से स्थिर चित्त से एकांत में बैठ कर विचारो कि हममें कौन कौन दोप हैं, जिनसे हमारा जीवन अशांत हो रहा है, और प्रतिदिन अध पतन होता जा रहा है। ऐसे विचार करने पर जो-जो दोप देख पड़ें, उनको एक कागज पर लिख लो और उसी के सामने उसके विरोधी सद्गुणों को लिखो। इसके बाद जहाँ तक हो, उन प्रतिकूल विचारों को अपने मन से बाहर निकाल दो और उनके स्थान पर नवीन उत्तम विचारों को जिन्हें कि तुम धारण करना चाहते हो, स्थापित करने का अभ्यास करो, अर्थात्—असत्य के स्थान में सत्य, अशांत के स्थान में शांति, भय के स्थान में निर्भयता, निराशा के स्थान में आशा, उदासीनता के स्थान में प्रसन्नता, निरुत्साह के स्थान में उत्साह, रोग के स्थान में निरोगता स्थापन करो। विचारों के बदलने और अपनी अनुकूलता प्राप्त करने के लिए यही सर्वोत्तम मार्ग है। दीर्घ काल तक निरंतर अभ्यास करने से नीच वृत्तियों के बंधन से छूटकर उन पर विजय प्राप्त करने के लिए सदा प्रसन्नता उत्साह, प्रेम, आदि सद्गुणों पर ही चित्त को बार-बार लगाना चाहिए। इससे तुम अपनी भावना के अनुसार तद्रूपता को प्राप्त होगे। दुःख, चिन्ता, शोकादि विकारों को सर्वथा भूल जाओगे और सद्गुणों को धारण करने से तुम्हारा तेज बढ़ जायगा।

यदि मनुष्य इस बात को अच्छी तरह समझ ले कि किसी

विचार या कर्म का नाश नहीं होता, तो कोई भी बुरा कर्म करने के पूर्व १० बार वह उस पर अवश्य विचार करेगा।

जन्म से मरण पर्यन्त हमारे शरीर, हमारे विचारों के श्रनुसार बनते और बिगड़ते रहते हैं। हमारे शरीर असख्य कोष्ठों से बने हुए हैं और वे कोष्ठ विचारों के अधीन हैं एव सदा परिवर्तित होते रहते हैं।

एक बार के किसी विचार से शरीर में कोई परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु बार-बार लगातार एक विचार करने से वह वैसा ही हो जाता है, जैसा कि विचार किया है।

विचारों का यह स्वभाव है कि उनका आदर करो, तो वे पुष्ट होते हैं और यदि उन्हें दुत्कार दो, तो वे चले जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। जैसे वृक्ष को जल और खाद मिलता है, तो वह पुष्ट होता है, फल देता है, और जो भूखों मरता है, वह मुरझा कर नष्ट हो जाता है, इसलिए तुम जिस विचार को सुखदायी समझो, उसका बारबार चिंतन करो और जिसे दु खदायी जानो, उसे भूल जाने का यत्न करो, तो वह नष्ट हो जायगा।

जिन विचारों को तुम पुष्ट और फलदायक बनाना चाहो, उनको प्रातः-साय १५ बार स्मरण करो, जप करो।

चिंता को नि शेष, निवृत्त करने के लिए चिंताजनक विचारों को दूर करके उनके विरोधी अच्छे विचारों को स्थापन करो। जिससे मन सदा प्रसन्न रहेगा और आत्मबल की वृद्धि होगी। विद्वान् जेम्स एलन् लिखते हैं कि दुःख सुख का कारण न कोई देवता है, न प्रारब्ध और न परिस्थिति ही है, किन्तु केवल विचार ही उसका कारण है।

अप्रसन्नता की अवस्था दूर करना हो, तो विचारों को पलट दो। मनुष्य कार्य को नहीं पलट सकता, किन्तु कारण को पलट सकता है। विचारों को पलट देने से स्वभाव पलट जाता है। स्वभाव पलटने से प्रसन्नता प्राप्त होती है। जैसे एक मनुष्य धनवान है, उसे चोरों से सदा भय बना रहता है। वह चौकी-पहरे का पूरा प्रबन्ध करता है, तो भी रात में चौंक उठता है। उसे स्वस्थ निद्रा नहीं आती। दूसरा भी धनवान है, जो संसार को अपना मित्र मानता है, सबसे प्रेम करता है, किसी से अभिमान नहीं करता, सदा दूसरों की सहायता करता रहता है, दान-धर्म में सदा धन खर्च करता है, वह अपनी रक्षा का भार ईश्वर को सौंपकर निर्भय सोता है। किसी से भय नहीं करता।

'अभय होहि जो तुम्हें डराहीं'

इन दोनों के पास धन होने पर भी एक सुखी और दूसरा दुखी क्यों है? केवल अपने विचारों से। एक संकुचित विचार का स्वार्थी है, दूसरा उदार विचारवाला परमार्थी है। परोपकारी है। ऐसे विचारों के प्रभाव से एक महादुखी और दूसरा महासुखी है। यह जगत् विचारों का ही स्थूल रूप है।

प्रत्येक मनुष्य की बाह्य अवस्था और संयोग उसके विचारों के अनुसार ही होते हैं। मनुष्य संसार को अपनी इच्छा के अनुसार नहीं बना सकता, परन्तु अपनेआपको संसार के अनु-कूल बना सकता है। वह अपनी परिस्थिति को बलात्कार से तोड़ नहीं सकता, किन्तु धैर्य से शान्ति के साथ उसमें से अपना मार्ग खोज सकता है।

तुम अपने विचार बदल दो, तो तुम्हारी प्रतिकूल परिस्थिति

अपनेआप बदल जायगी। यावत् मन चचल रहता है, तावत् उसमें अच्छे विचार नहीं आने पाते। ऐसे ही उन विचारों के अनुसार कार्य भी सफल नहीं होते। विश्वास रक्खो कि मन अनन्त शक्तियों का भण्डार है और चमत्कारों का खजाना है। उपनिषद् में लिखा है—'मनोब्रह्मेत्युपासीत।' मन को ब्रह्म-रूप जान कर उपासना करो। दूसरों से अप्रसन्न रहना, भयभीत रहना, द्वेष करना, इत्यादि सब मन के रोग हैं। कोई महात्मा अपने शिष्यों से कहा करते थे कि जिसके मन में ये भाव उठते हों कि अमुक मनुष्य ने मुझे दुःख दिया, या अमुक ने मेरा अपमान किया, तो समझ लो कि अभी उसने सत्य को नहीं प्राप्त किया और न वह उसे समझ ही सका है।

संसार की कोई भी वस्तु भली-बुरी नहीं है, केवल तुम्हारे विचारों के अनुसार वह तुम्हें भली या बुरी प्रतीत होती हैं। दर्पण में अपने ही मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता है। मनुष्य अपने विचारों के अनुसार संसार को देखता है। दुखी मनुष्य को ससार दुख-रूप और सुखी को सुख-रूप प्रतीत होता है। बहुत लोग कहा करते हैं कि 'यदि मैं स्वतन्त्र होता और मेरे पीछे बाल-बच्चों का झगड़ा न होता, तो मैं बहुत काम कर सकता, परन्तु यह उनकी निर्बलता है। क्योंकि बड़ा काम करने में बाल बच्चों से या धनाभाव से अथवा परतन्त्रता से कोई रुकावट नहीं आ सकती। यदि उनके विचार शुद्ध हों, तो वे जिन्हें रुकावट मानते हैं, वे ही सहायक प्रतीत होने लगेंगी। कई महात्माओं ने तो जेल में उत्तम ग्रन्थ भी तैयार किये हैं और यह भी उन्होंने स्वयं कहा है कि यदि हमें जेल न मिली होती, तो इतना अवकाश और

एकान्त भी नहीं मिल सकता था कि हम ऐसे ग्रन्थ, जेल से बाहर रह कर लिख सकते, इसलिए सोच-समझ के साथ जीवन के प्रत्येक दिन को अमूल्य जानकर अपने मन को ऊँची अवस्था में ले जाने का प्रयत्न करो और यदि नीचे के लोकों में ही तुम सुखी हो एव इसी अवस्था में रहना चाहते हो, तो तुम्हारी मरजी। हमारा काम तो चेतावनी देना है।

उत्तम विचारों को मन में लाने से उत्तम कार्य होते हैं, और उत्तम जीवन बनता है तथा उत्तम जीवन में आनन्द की प्राप्ति होती है। तुम अपनी स्थिति और अवस्था के स्वय निर्माता हो और तुम अपने भाग्य के नियता हो। अपने विचारों को बदल दो, तो तुम्हारी स्थिति बदल जायगी। विचार-शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो और अपने शरीर और मन और आत्मा के सर्वाधिकारी बनो।

चिंता और भय का प्रतीकार

अमेरिका के एक प्रसिद्ध डाक्टर का कथन है कि विश्वास के द्वारा हमारे मन तथा शरीर से जो कार्य होता है, उनमें जितनी शक्ति का व्यय होता है, उससे तिगुनी शक्ति का व्यय मन में भय और चिंता उत्पन्न होने से होता है, और हमारी मानसिक तथा शारीरिक शक्ति नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है; क्योंकि चिंता और भय मानसिक विकार हैं। जिनका मन चिंता से ग्रसित होता है, वे रात्रि को शयन स्थान पर तो जाते हैं, परतु उन्हें शांति पूर्वक निद्रा नहीं आती। उनके विचार और मन चिंता सागर में ही गोते खाते रहते हैं, और दिन की अपेक्षा उनको शक्ति का रात्रि में अधिक

व्यय होता है। जब उन्हें नींद आती है, तब उनके मस्तिष्क में चिंता बनी रहती और उससे शक्ति का व्यय होता रहता है, अतः सवेरे उठने पर उनका मुह शांत प्रफुल्लित नहीं दीखता। चिंता के दूर करने का प्रथम उपाय यह है कि तुम विश्वास कर लो कि तुम्हारी मानसिक शक्ति असीम है, और उसका उपयोग तुम अपने इच्छित फल की प्राप्ति के लिए कर सकते हो।

तुम्हें इच्छा शक्ति का उपयोग और आत्मविश्वास उत्पन्न करना होगा, जिसका फल शांति और निश्चितता होगी। कई चिन्ताएँ तुम्हारे किसी-न-किसी प्रकार के आन्तरिक विरोध से उत्पन्न होती हैं। असतोष के कारण अथवा अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई काम करने से अथवा कुटुम्ब में किसी के क्रोधित होने से मन दो तरफ बँट जाता है। उससे चिंता की उत्पत्ति होती है। इससे प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि जो काम हाथ में ले, उसमें पूरी इच्छा शक्ति को लगादे, परतु उस समय यह न सोचे कि अमुक मनुष्य इस काम को कर लेता तो अच्छा होता, क्योंकि इसमें तुम्हारी शक्ति का व्यर्थ व्यय होता है और मूर्खता प्रकट होती है, इसलिए जो कार्य तुम करते हो, उसे अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक रुचिकर जानते हो, इससे अपनी सारी इच्छा शक्ति को उसमें लगा देते हो।

अपनी चिंताओं की वृद्धि न होने दो और ज्यों-ज्यों चिंताओं के बारे में अधिक विचार किया जायगा, त्यों-त्यों वे विचार तुम्हारे मन पर अधिक प्रभाव डालते जायँगे। इससे चिंताओं का किंचित भी विचार न करो।

दूसरा उपाय दीर्घश्वास-प्रश्वास की क्रिया तथा व्यायाम है।

इनसे चिंताओं को दूर करने में विशेष सहायता मिलती है। यदि तुम्हारा रहना अथवा काम काज घर के भीतर होता है, तो कुछ मील तक रोज वायु-सेवन को जाया करो। इस बात पर तुम्हें विशेष ध्यान रखना चाहिए।

यदि पुरानी चिंताएँ तुम्हें व्यथित करने लगें, तो दीर्घ श्वास-प्रश्वास करने लगो और अपने मन में इच्छा करो और दृढ़ विश्वास भी करो कि जो कार्य हम कर रहे हैं, हमारा ध्यान उसी में लगा रहे।

अधिक सोच विचार न करो, किंतु अपने विचारों को जिस कार्य को कर रहे हो, उसी में लगा दो, तो तुम अपनी सब चिंताओं को भूल जाओगे। अपने नित्य के कार्यों में अपनी सारी विचार-शक्ति को लगाओ। जब तुम इस प्रकार से कार्य करने लगोगे, तब तुम्हारी विचार शक्ति और एकाग्रता-शक्ति के उपयोग से तुम्हारी विचार-पद्धति का भी पुनः नवीन निर्माण होने लगेगा। चिंता का नाश करने के लिए विचार-शक्ति का उपयोग करना अत्यंत आवश्यक है। इतना ही नहीं, किंतु चिंता तथा तज्जन्य मानसिक विरोधात्मक स्थिति का भी नाश करना अत्यंत आवश्यक है।

मन की संतप्त दशा तथा उसका परिहार

मन की संतप्त दशा मन को मार डालती है, इससे मस्तिष्क भी विकृत हो जाता है, इसलिए इस स्वभाव को छोड़ देना चाहिए। इस अनिष्ट स्वभाव के प्रतिबंध को दृढ़ संकल्प और शुद्ध बुद्धि से निवृत्त कर संतप्तता को ऐसे बाहर निकाल दो कि जैसे नाक से श्लेष्मा को बाहर फेंक देते हैं। इसका उपाय यह है कि

व्यय होता है। जब उन्हें नींद आती है, तब उनके मस्तिष्क में चिंता बनी रहती और उससे शक्ति का व्यय होता रहता है, अत. सवेरे उठने पर उनका मुह शांत प्रफुल्लित नहीं दीखता। चिंता के दूर करने का प्रथम उपाय यह है कि तुम विश्वास कर लो कि तुम्हारी मानसिक शक्ति असीम है, और उसका उपयोग तुम अपने इच्छित फल की प्राप्ति के लिए कर सकते हो।

तुम्हें इच्छा शक्ति का उपयोग और आत्मविश्वास उत्पन्न करना होगा, जिसका फल शांति और निश्चितता होगी। कई चिन्ताएँ तुम्हारे किसी-न-किसी प्रकार के आन्तरिक विरोध से उत्पन्न होती हैं। असतोष के कारण अथवा अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई काम करने से अथवा कुटुम्ब में किसी के क्रोधित होने से मन दो तरफ बँट जाता है। उससे चिंता की उत्पत्ति होती है। इससे प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि जो काम हाथ में ले, उसमें पूरी इच्छा शक्ति को लगादे, परतु उस समय यह न सोचे कि अमुक मनुष्य इस काम को कर लेता तो अच्छा होता। क्योंकि इसमें तुम्हारी शक्ति का व्यर्थ व्यय होता है और मूर्खता प्रकट होती है, इसलिए जो कार्य तुम करते हो, उसे अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक रुचिकर जानते हो, इससे अपनी सारी इच्छा-शक्ति को उसमें लगा देते हो।

अपनी चिंताओं की वृद्धि न होने दो और ज्यों-ज्यों चिंताओं के बारे में अधिक विचार किया जायगा, त्यों-त्यों वे विचार तुम्हारे मन पर अधिक प्रभाव डालते जायँगे। इससे चिंताओं का किंचित् भी विचार न करो।

दूसरा उपाय दीर्घश्वास-प्रश्वास की क्रिया तथा व्यायाम है।

इनसे चिंताओं को दूर करने में विशेष सहायता मिलती है। यदि तुम्हारा रहना अथवा काम काज घर के भीतर होता है, तो कुछ मील तक रोज वायु सेवन को जाया करो। इस बात पर तुम्हें विशेष ध्यान रखना चाहिए।

यदि पुरानी चिंताएँ तुम्हें व्यथित करने लगें, तो दीर्घ श्वास-प्रश्वास करने लगो और अपने मन में इच्छा करो और दृढ़ विश्वास भी करो कि जो कार्य हम कर रहे हैं, हमारा ध्यान उसी में लगा रहे।

अधिक सोच विचार न करो, किंतु अपने विचारों को जिस कार्य को कर रहे हो, उसी में लगा दो, तो तुम अपनी सब चिंताओं को भूल जाओगे। अपने नित्य के कार्यों में अपनी सारी विचार-शक्ति को लगाओ। जब तुम इस प्रकार से कार्य करने लगोगे, तब तुम्हारी विचार शक्ति और एकाग्रता-शक्ति के उपयोग से तुम्हारी विचार-पद्धति का भी पुन॰ नवीन निर्माण होने लगेगा। चिंता का नाश करने के लिए विचार-शक्ति का उपयोग करना अत्यंत आवश्यक है। इतना ही नहीं, किंतु चिंता तथा तज्जन्य मानसिक विरोधात्मक स्थिति का भी नाश करना अत्यंत आवश्यक है।

मन की संतप्त दशा तथा उसका परिहार

मन की संतप्त दशा मन को मार डालती है, इससे मस्तिष्क भी विकृत हो जाता है, इसलिए इस स्वभाव को छोड़ देना चाहिए। इस अनिष्ट स्वभाव के प्रतिबंध को दृढ़ संकल्प और शुद्ध बुद्धि से निवृत्त कर संतप्तता को ऐसे बाहर निकाल दो कि जैसे नाक से श्लेष्मा को बाहर फेंक देते हैं। इसका उपाय यह है कि

मन का पूरा-पूरा प्रतिरूप है और मन पर पड़नेवाला प्रत्येक चिह्न किसी-न-किसी रूप में उसके बाहरी शरीर पर पड़े बिना नहीं रह सकता। शरीर मांस और रक्त में परिणत मन ही है। इससे जाना जाता है कि अपने विचारों को अपने वश में करना कितना आवश्यक है। विचारों के स्वागत के लिए मन का द्वार सदा खुला रहता है, परन्तु उसका स्थायी होना न होना तुम पर निर्भर है। जब तुम्हें यह अनुभव हो जायगा कि बुरे विचारों से ही रोगों की उत्पत्ति होती है और अच्छे विचारों से आरोग्य वृद्धि होती है, तो तुम कभी बुरे अपवित्र और अन्याय-युक्त दूषित विचारों के निकालने में देरी न करोगे। वे तुम्हारे मन में उतनी ही देर तक रह सकेंगे, जितनी देर उनको निकालने में लगेगी।

केवल शुद्ध विचारों से ही तुम अशुद्ध विचारों को निकाल कर भगा सकते हो। इससे सदा शारीरिक स्वास्थ्य का ही विचार करो। प्रत्येक मनुष्य शारीरिक व्याधियों से बचना चाहता है। और पूर्ण रूप से निरोग रहना चाहता है। स्वास्थ्य पर सबका जन्मसिद्ध अधिकार है, इससे यदि तुमको स्वस्थ रहना है, तो अपने विचारों को स्वास्थ्य की ओर लगाओ और अपनी नस-नस में स्वास्थ्य के भाव भर दो। पूर्ण स्वास्थ्य क्या है, इसकी मन में कल्पना करो। स्वास्थ्य और शुभ सकल्पों से मन को पूरित करो, तो तुमको ज्ञात होगा कि हमारे शरीर में नवजीवन आ रहा है, हमारी नसों में रक्त खूब जोर से चक्कर लगा रहा है। इससे नया उत्साह भी उत्पन्न हो रहा है। यदि शरीर में कोई रोग हो, तो उसकी निवृत्ति के लिए शुद्ध और उत्तम विचारों के साधन और उपर्युक्त क्रियाओं के साथ शरीर के

जिस अंग में पीड़ा हो, उस अंग पर अपना हाथ रखो और मुँह से श्वास छोड़ो, साथ ही उसके अच्छे होने का विचार करो, अर्थात्—अपने मन को व्याधि स्थान पर स्थिर कर यह विचार करो कि हमारा रोग निःसंदेह हमारे मलिन श्वास-द्वारा बाहर निकल रहा है। जैसे तुम्हारी पसली में दर्द है, तो उस समय अपने मन को पसली में ही लगाओ, अन्यत्र न जाने दो। ऐसा करने से पसली तुम्हारी मनोवृत्ति का मुख्य स्थान बन जायगी, अतएव उस स्थान पर अधिक मनोबल लगाकर उसे अच्छा कर सकते हो। ऐसा एक बार करके देखो कि मन की आज्ञा का कैसा प्रभाव पड़ता है।

विज्ञान के आश्चर्यजनक प्रयोग अज्ञानियों को चकित करते हैं, परन्तु जो उसके ज्ञाता हैं, या अनुभवकर्ता हैं, उनको वे बहुत ही साधारण प्रतीत होते हैं।

यदि तुमको स्वास्थ्य की इच्छा है, तो अपने मन को स्वास्थ्य पर लगाओ। अपने को स्वस्थ देखो और दूसरों से स्वीकार कराओ कि तुम स्वस्थ और बलिष्ठ हो। अपने मन में सदा रोग और दुर्बलता-रहित अपना चित्र १०-१५ मिनट तक देखते रहो और भावना करो। ऐसा करने से वह चित्र वास्तव रूप में परिणत हो जायगा, अर्थात्—उस चित्र और तुम्हारी भावना के अनुसार शरीर बन जायगा। यद्यपि इस कार्य में सफलता तत्काल न होगी; परन्तु अपने प्रयत्न और भावना को करते रहो। यदि तत्काल ही फल न हो, तो निराश मत होओ। फल अवश्य होगा, और शीघ्र होगा। १५ दिन या एक मास, नित्य १०-१५ मिनट करने से अवश्य लाभ प्रतीत होगा। रोग की

न्यूनाधिक दशा और वह नया पुराना जैसा होगा, वैसा ही न्यूनाधिक समय भी लगेगा। यह अनुभूत प्रयोग है, करके देखो। एक बार अनुभव होने पर सदा के लिए दृढ़ निश्चय हो जायगा।

असद्विचार निवृत्ति का उपाय

सात्विक भोजन, ब्रह्मचर्य, यथाशक्ति प्राणायाम, दीर्घश्वास प्रश्वास और अपनी आरोग्यता का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन, अर्थात्—जो रोग हो उसका उपाय करना, इन उपायों से अवश्य विचारों का परिवर्तन हो जाता है। इतने पर भी यदि बुरे विचार मन में आवें, तो उनसे विपरीत अच्छे विचारों का सदा अभ्यास कभी नहीं हो सकता। इन नियमों का पालन करने पर भी उत्तम विचार न उठें, तो इससे निराशा चिंता आदि मानसिक विचारों को सर्वथा भूल जाओ और सदा प्रसन्नता, उत्साह, आनन्द, प्रेम आदि सद्गुणों पर चित्त लगाओ। ऐसे केवल विचारों के परिवर्तन से ही तुम्हारी दशा में आशातीत उन्नति होगी। जैसा अपने को बनाना चाहा, वैसे विचार बारम्बार अपने मन में करो। और जो काम तुम नहीं करना चाहते हो, उनको उत्पन्न करनेवाले विचारों को क्षण मात्र भी मन में न रहने दो, किन्तु उनको आज्ञा देने वाले शब्दों में मन ही मन कहो कि ये विचार चले जायँ अथवा कहो कि भस्म हो जायँ, तो वे विचार तुम्हारी आज्ञानुसार अवश्य लुप्त हो जायँगे। यदि मनुष्य तुच्छ घृणित विचार करता है, तो जैसे बैल के पीछे पहिया लगा रहता है, वैसे उसके पीछे दुःख-क्लेश लगे रहते हैं, परन्तु जिसके विचार पवित्र हैं, उसके साथ मनुष्य की छाया की तरह सुख रहता है। मन की कल्पना

ही महान् शक्ति है । इसी से वह भविष्य का चिंतन कर सकता है । जिस वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा हो, उसे जो अपने पास समझता और उसके अस्तित्व का अनुभव करता है, वह उस वस्तु को अवश्य प्राप्त होता है । यद्यपि इन्द्रियों से स्वप्न में भी उस वस्तु का खयाल नहीं आता, किन्तु इंद्रियों का राजा मन है, वह दूर-से-दूर वस्तु का भी अनुभव कर सकता है।

किसी प्रकार के बन्धन से मुक्त होने के लिए मन से कल्पना करो कि हम बंधन से मुक्त हैं, तो उसी क्षण बन्धन से मुक्त हो जाओगे मन से बंधन के मुक्त होने की भावना उदय होते ही बाहर के बंधन ढीले पड़ जाते हैं और उनका बल घट जाता है, अतः उन बंधनों को तोड़ने में कुछ भी देर नहीं लगती । मन का कितना अद्भुत सामर्थ्य है, इसका हमें स्वप्न में भी खयाल नहीं आता। धर्मशास्त्र बार-बार पुकार कर कहता है कि मन ही मनुष्य के बंधन या मोक्ष का कारण है 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयो'। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि एक उपाय से मनुष्य का जीवन पलट सकता है और आनंदमय बन सकता है। सत्यता, ईमानदारी, न्याय, पवित्रता, प्रेम, और सच्चरित्रता के विचारों में कोई विलक्षण शक्ति है, उन पर विचार करो, परंतु विचारों को एक बार इधर-से उधर दौड़ाने से कुछ लाभ न होगा। अतः प्रत्येक विचार पर मनन करना चाहिए।

मन अति चंचल है, उसकी शांति का उपाय करने पर भी मौका पाते ही निकल जाता है, क्योंकि उसका स्वभाव ही चंचल है, एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। इससे उसे यदि अच्छे विचार में लगा दें, तो भी वह बुरे विचारों में दौड़ जाता है; क्योंकि हमें

बहुत काल से बुरे विचार करने का स्वभाव पड़ा हुआ है। इससे बुरे विचारों के संस्कार उसमें बहुत हैं। हमारा मन सदा नीच विचार ही करता है और हमारे आसपास के वायु मंडल में जो नीच विचार रहते हैं, वे मन को उच्च विचार के आधार रहित देख कर उसमें घुस आते हैं। इससे यदि अपना भविष्य सुधारना हो, तो पहले शुभ संकल्प करना सीखना चाहिए।

यदि अपने मन को सुधारना है और बुरे विचारों को रोकना है, तो प्रथम सत्संग करना और अच्छी पुस्तकों को पढ़ना चाहिए। बारबार उत्तम बातों को सुनने का नाम श्रवण है, इससे मन जागने लगता है। फिर सुने हुए विचार भीतर से उभरते हैं तथा आलसी मन को जगाते हैं। इससे सुने तथा पढ़े हुए उच्च विचार मन में जम कर मन उन्हीं में रम जाता है। उसी की वार्ता परस्पर करता है, उससे वैसे ही स्वप्न देखता है। इस अवस्था को मनन कहते हैं। जब अच्छे विचारों का मनन करना आ जाता है, तब बुरे विचार मन में बहुत नहीं आ सकते। इससे धीरे-धीरे मन वश में होने लगता है। पश्चात्, जैसे विचार बारम्बार सुने हैं और जिनका प्रेम-पूर्वक मनन किया है, उसी के अनुसार कर्म करने का नाम निदिध्यासन है। यह निदिध्यासन जब सिद्ध हो जाता है, तभी मन, वाणी, कर्म की एकता हो जाती है। उससे यथार्थ उन्नति होती है, क्योंकि प्रथम श्रवण करने से अच्छे विचार मन में आते हैं। उससे मन सुधरने लगता है। फिर श्रवण किये हुए विषय का ज्यों-का-त्यों मनन बढ़ता है। इस प्रकार बुरे विचार दूर किये जा सकते हैं, पर मन शांत होने लगता है और अच्छे विचार मन में रमा करते हैं। उस

नमय वाणी से प्रिय वचन निकलने लगते हैं, जिनसे सुननेवाले प्रसन्न होते हैं।

श्रवण से मन सुधरता है और मनन से वाणी सुधरती है, तथा निदिध्यासन से कर्म सुधरता है। तब मनुष्य की उन्नति होती है। ये सब कार्य हृदय की शुभ इच्छा और सुविचार तथा अच्छे चाल-चलन और अच्छी संगति से होते हैं, परन्तु सब का मूल शुभ इच्छा और सुविचार है।

योगी लोग अपने शिष्यों को मानसिक मूर्ति की कल्पना करने पर विशेष जोर देते हैं, इससे शिष्य उसी के अनुसार मानसिक मूर्ति बनाकर संकल्पानुसार बाह्यजगत् में कार्य-सिद्धि करता है। इस रीति से केवल मनुष्य का स्वभाव ही नहीं सुधारा जाता है, किन्तु जीवन की अन्य अवस्थाएँ (घटनाएँ) भी इसी नियम की अनुवर्तिनी हो सकती हैं, परन्तु ये उच्च योगी-जन मनुष्य-जाति के उद्धार, स्वभाव-परिवर्तन आदि परोपकार ही में मन लगाने की शिक्षा देते हैं, इसलिए केवल परोपकार और दूसरों की भलाई में अथवा अपना स्वभाव सुधारने में ही इस रीति का प्रयोग करना या कराना चाहिए, परन्तु किसी अनिष्ट कार्य में इसका प्रयोग करने से महान् हानि उठानी पड़ेगी और इसी से महान् दंड भी भोगना पड़ेगा।

जो उच्च जीवन को पूर्ण रीति से प्राप्त करना चाहता है और जो वस्तुओं को वास्तविक रूप में देखना चाहता है, एवं जीवन के उद्देश को समझना चाहता है, उसे अपने हृदय या मन की वासनाओं को त्याग देना और भलाई के अभ्यास में निरन्तर तत्पर रहना चाहिए।

म्बार मन में सोचते रहो और यह कहो कि ऐसे स्वभाववाला मनुष्य मूर्ख होता है। यदि कदाचित् स्वभाव-वश फिर वही भूल हो जाय, तो उसकी उपेक्षा न करके मन का दमन करते हुए दुष्ट इच्छा को निकाल देना चाहिए।

यदि अपने में कोई मूर्खता-पूर्ण कार्य करने की इच्छा हो, तो पहले २५ तक गिन लो, और फिर कार्य करो। इससे दुष्ट इच्छा का दर्प भग होकर उसकी निवृत्ति हो जायगी।

यदि २५ तक गिनने पर भी चित्त उसी कार्य में प्रवृत्त हो, तो उस पर दंड-रूपी शासन नियत करो कि 'हे मन, यदि तुम पुन ऐसी मूर्खता का काम करोगे, तो तुमको एक दिन निर्जल उपवास करना पड़ेगा'। इस प्रकार दृढ निश्चय से कहने से भी वह दोष निवृत्त हो जायगा।

जितनी तुममें मूर्खता की बातें हों, उन को एक कागज पर लिख लो और सदा अपने साथ रखो। उनको पढकर बारबार अपनी मूर्खता समझने का उद्योग करो। और प्रत्येक बार उनको छोड़ने का दृढ प्रण करो। इस प्रकार दस दिन करने से स्वभाव में अवश्य परिवर्तन प्रतीत होगा। ईश्वर-भक्ति और विश्वास, सज्जन सगति, अटल निष्ठा, प्रभु-पद-पकज प्रीति, होने पर ससार में ऐसी कौन-सी बात है, जो दुर्गम वा असंभव हो। आशा और आत्म-विश्वास पर ही मनुष्य ससार में जीवित रह सकता है, और सब प्रकार सर्व कार्य की उन्नति कर सकता है।

जिस मनुष्य को दृढ विश्वास होता है, वह कष्टों के आने पर किंचित् भी भयभीत नहीं होता, चाहे जितनी विपत्तियाँ आवें, वह कभी अपने प्रारम्भित कार्य से हताश नहीं होता।

तुम उसी समय तक निर्बल और दीन-दशा में रहोगे, यावत् तुम नीच और तुच्छ विचारों के अधीन रहोगे। अतः तुमको सदैव अपने मन में उच्च भावों और उच्च आकांक्षाओं को स्थान देना चाहिए।

राजयोग से उद्धृत

प्रत्येक मनुष्य अनुभव करता है कि शिक्षा और अभ्यास के प्रबल प्रयत्न द्वारा अपने स्वभाव या चालचलन में परिवर्तन किया जा सकता है।

योगीजन अपने शिष्यों को शिक्षा देते हैं कि मनुष्य का जो चरित्र जन्म समय अनगढ़ रहता है, वही साधारण मनुष्यों की दशा में बाहरी प्रभावों से गढ़ा और कुछ सुधारा भी जाता है, तथा चतुर ज्ञानवानों के संग से विचार और आत्मशिक्षण द्वारा पूर्ण रूप से सुधारा जा सकता है। जब योगियों के शिष्यों के चरित्र की परीक्षा की जाती है, तब अनिष्ट के निराकरण और इष्ट के अनुभवों के जगाने की शिक्षा दी जाती है।

चरित्र सुधारने की सर्वोत्तम रीति यह है कि प्रथम प्रकृति का अनुसरण कर उसे अभीष्ट अनुभवों की ओर आकांक्षा और एकाग्रता से क्रमशः विकसाया जाय; क्योंकि अभीष्ट अनुभवों का सम्पादन पूर्व-स्वभावों के प्रतिकूल अनुभवों के जगाने से किया जाता है।

जैसे शिष्य भीरुता को हटाना चाहता है, तो उसे भय को मार डालने की शिक्षा नहीं दी जाती; किन्तु यह शिक्षा दी जाती है कि मन से भय को त्याग कर वीरता की भावना पर चित्त को

एकाग्र करो। ज्यों-त्यों वीरता का विकास होगा त्यों त्यों भय का लोप होता जायगा।

अचेतन चरित्र संगठन के विषय में योगियों की रीति का मूल तत्व आदर्श है, उसमें यह शिक्षा दी जाती है कि प्रथम गुलाब के वृक्ष को आदर्श बनाकर उस पर जितनी एकाग्रता करोगे उतना ही वह बढ़ेगा। हरा-भरा रहेगा और जितनी एकाग्रता की कमी होगी, उतना ही हीन क्षीण रहेगा। उसी पर अपनी एकाग्रता से कल्पना-शक्ति का प्रयोग करो और मन में यह भावना करो कि यह वृक्ष बढ रहा है। उस समय शिष्य को जप के लिए मंत्र बताया जाता है और मन्त्र के शब्द के अर्थ में मन लगाने की शिक्षा दी जाती है। केवल तोते की नाईं शब्द उच्चारण से पूर्ण लाभ नहीं होता। मंत्रों के शब्दों में प्रबल शक्ति होती है, इससे जप करते समय शब्दों के अर्थ में मन लगाने की शिक्षा दी जाती है।

यह शिक्षा तब तक दी जाती है कि, जब तक सचेतन मन की प्रेरणा-द्वारा मन की अचेतन रचना के कार्यों में शक्ति न प्राप्त हो जाय। यह शक्ति उन सबको प्राप्त हो सकती है, जो इसके अभ्यास में परिश्रम करेंगे। प्रत्येक मनुष्य इस शक्ति को धारण किये है और वर्तता भी है, परन्तु इस बात को वह जानता नहीं।

मनुष्य का चरित्र अधिकांश उन विचारों के अनुकूल होता है, जो सदा उसके मन में वास करते हैं और उन आदर्शों के अनुकूल होता है जिन्हें वह धारण करता है।

जो अपने को हारा हुआ मानता है, उसके मन में उन बातों के विचार अधिक आने से उसकी प्रकृति उन विचारों के अनुसार,

हो जाती है, और जो सफलता और विजय का अधिक विचार करता है, उसे जान पड़ता है, कि मेरी मानसिक प्रकृति उसी कार्य को कर रही है। आदर्श ही वास्तविकता में परिणत होता है। यही बात प्रत्येक आदर्श के विषय में है।

जो ईर्ष्या का विचार करता है उसके हृदय में ईर्ष्या अवश्य उत्पन्न होती है और वह ईर्ष्या को बार बार विचार द्वारा पुष्ट करता है।

मनुष्य जैसा चाहे वैसा अपने भावों को ढाल सकता है। अनिष्ट विचारों के स्थान में उत्तम गुणों को स्थापन कर सकता है और कार्य में ला सकता है। जो मन के ढालने के रहस्य को जानता है, उसके लिए मन पूर्ण संस्कार-ग्रहण-शील है।

साधारण मनुष्य अपने चरित्र के निर्बल और सबल मर्म को जानता है, परन्तु उनको अटल अपरिवर्तन-शील, अर्थात्—एकरस रहनेवाला समझता है। वह यह जानता है, कि हम ठीक वैसे ही हैं जैसा ब्रह्मा ने हमको गढ़ा है, परन्तु वह यह नहीं समझता, कि उसका चरित्र दूसरों के संग से परिवर्तित हो रहा है और यह भी नहीं जानता, कि मैं स्वयं किसी वस्तु में रुचि उत्पन्न करके उसपर अपना मन जमाने और अपने चरित्र की रचना करनेवाला हूँ। मनुष्य का अधिकार है, कि वह अपने को जैसा चाहे वैसा बनावे। यदि वह अपने को दूसरों के विचार और आदर्श के अनुसार ढलने देता है, तो उसकी ढलाई दूसरों के संग के अनुसार होती है। वह मनुष्य प्रवल है, जो अपने को स्वयं अपनी इच्छानुसार गढ़ता है। चरित्र-गठन की रीति इतनी सरल है, कि इसकी महिमा को बताये जाने पर लोग भी

इसे भुला देते हैं। वस्तुतः इसका अभ्यास करने और उसके फल का अनुभव करने पर मनुष्य के हृदय में इसका अद्भुत महत्व अंकित होता है।

योगी लोग आरम्भ ही से शिष्य को प्रबल क्रियात्मक उदाहरण द्वारा चरित्र-गठन की महिमा और शक्ति की शिक्षा देते हैं। शिष्य को जो वस्तु प्रिय है उसे अप्रिय और जो अप्रिय है उसे प्रिय करने की इच्छा जगाने की शिक्षा देते हैं और दोनों वस्तुओं पर एकाग्रता करने को कहते हैं। एक पर रुचि और दूसरी पर अरुचि की भावना कराते हैं। जैसे मिश्री प्रिय है, तो यह भावना करो, कि मिश्री से मैं घृणा करता हूँ, उसे देखने की भी मुझे इच्छा नहीं है, परन्तु खट्टी वस्तु से प्रेम करता हूँ और उसके स्वाद के आनन्द में मग्न हो जाता हूँ। साथ ही मीठी वस्तु का स्मरण घृणा के साथ और खट्टी वस्तु का स्मरण प्रसन्नता से करता हूँ। ऐसी भावना करने से थोड़े काल में प्रतीत होने लगता है, कि विचारों के अनुसार स्वाद और रुचि में अन्तर पड़ रहा है। अन्त में वह वैसी ही प्रिय वा अप्रिय लगने लगती है, तब इस युक्ति की महिमा शिष्य के मन पर पूरी पूरी अंकित हो जाती है। इससे फिर वह इस विधि को कभी नहीं भूलता।

योगी लोग पहले इस क्रिया के महत्व को शिष्य के चित्त पर अंकित करके स्वादानन्द को उसी क्रिया द्वारा हटवाते हुए लाभकारी पदार्थों में रुचि और हानिकारक पदार्थों में अरुचि उत्पन्न करा देते हैं। इन सब शिक्षाओं का उद्देश्य स्वाद का जगाना और हटाना मात्र नहीं है, किन्तु मन को शिक्षित करना

और शिष्य के मन में यह अंकित करना है, कि उसका स्वभाव इच्छानुसार बदला जा सकता है। इसमें केवल चित्त की एकाग्रता और विचार-पूर्वक अभ्यास की आवश्यकता है।

यह अभ्यास उद्यम, व्यापार, कर्तव्य पालन आदि सभी विषयों पर घटित हो सकता है।

चरित्र गठन की क्रिया का मुख्य अभिप्राय यह है, कि जीव मन का स्वामी है और मन जीव की आज्ञानुसार अपनी रुचि, चेष्टा, क्रिया आदि सब बदल सकता है और बदल देता है। इससे मन शरीर की भाँति सर्वदा परिवर्तनशील, चलता और बढ़ता है। जैसे शरीर विचार-पूर्वक अभ्यासों के द्वारा विकसित और संगठित किया जा सकता है, वैसे ही मन भी जीव की इच्छानुसार विकसित, प्रेरित और गठित किया जा सकता है। यदि विचार पूर्वक कही हुई रीति से अभ्यास किया जाय।

बहुत मनुष्य समझते हैं, कि स्वभाव पलटा नहीं जा सकता, परन्तु वे स्वतः अपनी नित्य की क्रियाओं में अपने पास आने जानेवाले मनुष्यों के चरित्र या स्वभाव को बदलने और सुधारने का सदैव यत्न करते रहते हैं और उसी अभिप्राय से वचन, उपदेश, सम्मति, प्रशंसा अथवा दबाव का भी बर्ताव करते हैं।

चरित्र-संगठन के ५ कारण हैं—१ पूर्व-जन्म के अनुभवों का परिणाम, २ पैतृक दाय अथवा पिता माता का स्वभाव, ३ संगति, ४ अन्य की प्रेरणा और ५ स्वतः सूचना देना।

किसी का कैसा भी स्वभाव हो, उपर्युक्त रीति से सुधारा जा सकता है।

स्वभाव के सुधारने में प्रथम सुधार की तीव्र इच्छा होनी

चाहिए। यावत् तीव्र इच्छा न होगी, तावत् कोई भी उसकी ओर किंचित् ध्यान न देगा और न उसका आभास ही करेगा; इसलिए यदि इच्छा की कमी है, तो प्रथम इच्छा को जगाना चाहिए। उसका उपाय यह है कि जिस वस्तु की सामान्य इच्छा हो, उसी पर चित्त को एकाग्र करे। इस प्रकार केवल शुभ कामना ही नहीं, किंतु अनिष्ट कामना भी जगाई जा सकती है। जैसे कोई युवक पागल होने की इच्छा नहीं करता, परन्तु यदि किसी समय वह पागलों के विषय में बातें सुनता या पढता है और अपने मन को उस विषय के विचारों में लगाता है, अतः बारबार उसी विषय को उलटता-पलटता है और वैसी ही कल्पना करता है, तो थोड़े काल में उस विषय का बीज जमकर अंकुर लेता है। यदि वह ऐसे ही उस विषय का बारबार विचार के द्वारा उस बीज का सिंचन करे, तो थोड़े काल में वह कामना विकसित हो जायगी और कार्य-रूप में परिणत होने की चेष्टा करेगी, अर्थात्—वह पागल का सा व्यवहार करने लगेगा। इसी रीति से जिन्होंने अनिष्ट विचारों का बीज बोकर विचारों का सिंचन किया, वे अवश्यमेव विपाक्त फल का भोग करेंगे।

स्मरण रखो कि जो मानसिक बल नीचे ले जाता है, वही परिवर्तित किया जाय, तो ऊपर ले जा सकता है। जैसे विष का बीज बोया गया वैसे ही अमृत का बीज भी बोया जा सकता है; अर्थात्—अनिष्ट कामना के स्थान में अभीष्ट कामना का बीज बोया जा सकता है।

यदि तुमको अपने चरित्र या स्वभाव में किसी कमी या त्रुटि को पूरा करने की आवश्यकता है; परन्तु प्रबल कामना नहीं

है, तो पहले उस कामना का बीज मन में बोओ और विचार द्वारा उसका चिंतन करो, साथ ही उस त्रुटि के दूर करने के अभीष्ट अनुभवों पर चित्त को एकाग्र करो, और अपने को उस गुण से युक्त कल्पना करो, तब उस गुण की कामना तुम्हारे मन में जाग उठेगी और अङ्कुरित होकर पल्लव पुष्प तथा फल देगी। इसके बाद जब वह कामना प्रबल हो जायगी, तब तुम्हारे मन में ऐसी भावना उदय होगी कि किस प्रकार शीघ्र वह कामना पूर्ण हो; इसलिए प्रथम कामना को जगाओ, उससे कार्य-सिद्धि की कामना आप ही जगेगी। प्रबल कामना से मनुष्यों ने ऐसे ऐसे कार्य किये हैं, जो करामात के समान हो गये हैं।

यदि तुम्हें यह ज्ञात हो कि हमारे मन में अमुक हानिकारक इच्छा है, तो उसे एकाग्रता का भोजन न देकर दूर कर सकते हो, अर्थात्—उस हानिकर इच्छा का किंचित विचार न कर उसकी विरोधी इच्छा पर मन को लगाओ। इससे अभीष्ट कामना शीघ्र पूर्ण होगी और अनिष्ट थोड़े ही काल में निवृत्त हो जायगी, परन्तु अनिष्ट कामना का विचार एक बार भी मन में न आने देना चाहिए।

यह कार्य श्रद्धा, विश्वास और आशायुक्त होना चाहिए, क्योंकि बहुतों को तो इस विषय को जान लेने ही से श्रद्धा उत्पन्न हो जायगी, परन्तु जिनमें श्रद्धा और आशा का अभाव है, उनको क्रमशः श्रद्धा, विश्वास और आशा को जगाना चाहिए। उसका उपाय यह है कि प्रथम चरित्र या स्वभाव के किसी छोटे अनुभव को, जिसे प्राप्त करना सरल हो, उसका अभ्यास कर फल प्राप्त करने से श्रद्धा, विश्वास और आशा का उदय अवश्य हो

जायगा। जितनी ही श्रद्धा, विश्वास तथा आशा अधिक बढ़ेगी और जितना इसका अभ्यास अधिक होगा, उतनी ही सफलता शीघ्र होगी। श्रद्धा और विश्वास से मानसिक कार्य में शीघ्र सिद्धि होती है और कार्य सरल हो जाता है। संशय और अश्रद्धा से कार्य-सिद्धि में बाधा पड़ती है और ये मार्ग रोधक हो जाते हैं।

तीव्र इच्छा, दृढ विश्वास और अभ्यास ये तीनों परमावश्यक हैं, इससे चरित्र-संगठन का मार्ग खुल जाता है।

चरित्र-गठन, अर्थात्—स्वभाव बनाना और चरित्र परिवर्तन का अर्थ है—स्वभाव को बदलना।

स्वभाव बुद्धि पर अधिकार जमा लेता है, क्योंकि भय के उपस्थित होनेपर चौंक पड़ने का स्वभाव ऐसा दृढ हो जाता है कि इच्छा कितना भी जोर मारे, तो भी काँच के बक्स की तरह उस पर हाथ नहीं रखा जा सकता, अर्थात्—बक्स में सर्प फन से झपट्टा मार रहा हो और यद्यपि मनुष्य जानता है की काँच का दल मोटा है, अतः साँप से भय नहीं हो सकता, परन्तु फिर भी हाथ रखते हुए डरता है, अर्थात्—इस सुदृढ़ स्वभाव को मनुष्य मन की शिक्षा और सुविचार-द्वारा निवारण कर सकता है।

नवीन स्वभाव केवल इच्छामात्र से तत्काल मन पर अंकित नहीं होता, किन्तु उसी कार्य को बार-बार करने से शनैः शनैः स्थिर हो जाता है। जैसे संध्या समय किसी काम को सीखो तो दूसरे दिन उस कार्य के करने में पूर्व की अपेक्षा सरलता प्रतीत होगी। फिर तो दिनोंदिन और भी सरलता होती जायगी।

एक विद्वान् ने कहा है कि क्रिया का बीज बोओगे, तो

स्वभाव का फल पाओगे और स्वभाव का बीज बोओगे, तो चरित्र का फल पाओगे।

एक विद्वान् का कथन है कि ईमानदारी के स्वभाववाला उचित ही कार्य करता है। वह यह जानकर नहीं करता कि इस प्रकार मुझे ईमानदारी से काम करना चाहिये, किंतु स्वाभाविक रीति से ही वैसा काम करता है, क्यों कि यावत् उसे वह अपने स्वभावानुसार कर नहीं लेता, तावत् उसे उद्वेग सा बना रहता है।

इससे जिस स्वभाव को डालने की इच्छा हो, प्रथम उसकी मानसिक मूर्ति स्पष्ट बनाना चाहिए, फिर अपने अभीष्ट अनुभव को निरन्तर धैर्य के साथ विचार करना उचित है। ज्यों ज्यों इस अभ्यास को किया जायगा, त्यों-त्यों अपनी मानसिक मूर्ति के अनुसार कार्य करना स्वाभाविक होता जायगा। अन्त में नया स्वभाव सुदृढ़ हो जायगा और चाल ढाल भी स्वाभाविक रूप से वैसी ही हो जायगी। यह निश्चित मनोविज्ञान की बात है और इससे हजारों नर नारियों ने अपने स्वभावों में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर लिया है। इस रीति से केवल धार्मिक चरित्र की ही उन्नति नहीं होती, किंतु व्यावहारिक चरित्रों का भी आवश्यकतानुसार सुधार हो सकता है।

जब मनुष्य इस स्वभाव परिवर्तन की यथार्थता को जानकर अनुभव कर लेता है, तब वह अपने को दूसरा मनुष्य मानकर अपने पूर्व-सहवासियों से बहुत ऊँचा पाता है। तब वह निश्चय कर लेता है कि मनुष्य अभ्यास से अवश्यमेव अपने स्वभाव को सुधार सकता है।

किसी भावना को हृदय में शब्दों के बिना धारण करना कठिन है, क्योंकि शब्द ही भावना का मुख्य स्थान है, और मानसिक मूर्ति मानसिक स्वभाव का मुख्य स्थान है, इसलिए योगी लोग शब्दों के व्यवहार पर विशेष जोर देते हैं। उनका कथन है कि साहस, विश्वास, स्थिरता, दृढता, समता प्रत्येक शब्द के अर्थ की भावना मन में धारण करने की चेष्टा करो, जो भी तुम्हें अपेक्षित हो, परन्तु तोते की नाईं केवल शब्दमात्र उच्चारण न करो, वरन् शब्द के साथ अर्थ का भी अनुभव करो और शब्दों को बार-बार उच्चारण करो। इससे शब्द मानसिक पुष्टि का काम करता है। जितनी बार अर्थ-सहित शब्दों का उच्चारण करोगे, उतना ही शीघ्र तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।

अभ्यास करने की रीति

प्रथम अपने मनमें एक कार्य का दृढ़ निश्चय कर लो। जैसे—'इस सप्ताह में अवश्य ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा' कदाचित् पहले सप्ताह में तुम अपने निश्चय से गिर गये, तो दूसरे सप्ताह में अवश्य सफलता होगी। फिर दो सप्ताह का निश्चय करो। इसी प्रकार क्रम क्रम से अभ्यास बढता जायगा। सब अभ्यासों का यही क्रम है। प्रतिज्ञा पूर्वक समय का नियम बांधकर सब साधनों का अभ्यास करने से सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

विचार और भावना में भेद

विचार और भावना भिन्न वस्तु नहीं हैं, किंतु विचार की ही उन्नतावस्था को भावना कहते हैं। जैसे पानी की शक्ति डाइनमों के पहिये के नीचे विद्युत्प्रकाश में बदल जाती है, वैसे ही भावना भी विचार-शक्ति के द्वारा विचारों में बदल जाती है, इसलिए जो जितना भावुक होगा, वह उतने ही अधिक विचारों की सृष्टि कर सकेगा।

कवियों और लेखकों की भावुकता ही उनके कार्यों और ग्रंथों में प्रकट होती है। भिन्न भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न मनुष्यों के साक्षात्कार से मन पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ते हैं। जीवधारियों और वस्तुओं के कंपन किरण-रूप से धारा-प्रवाह के समान मनुष्य पर गिरते रहते हैं। इससे मन में अनेक प्रकार की भावनाएँ उदय होती हैं। पशु को इन भावनाओं का ज्ञान नहीं होता, किंतु मनुष्य को ही होता है, परन्तु इनके अर्थ समझ सकना हरेक का काम नहीं है। बहुधा हमारे मन में बड़े जोर की भावना उदय होती है और हमें कुछ आभास भी मिलता है, परन्तु न तो हम उसका कुछ मतलब समझते हैं और न कारण। कभी-कभी हमारा मन अचानक उदास हो जाता है। अथवा न जाने हमारा मन अपने मित्र से मिलने की क्यों प्रेरणा करता है, परन्तु हमें बहुत सोचने पर भी इसका कारण नहीं जान पड़ता। कुछ काल बाद जब हमें खबर मिलती

किसी भावना को हृदय में शब्दों के बिना धारण करना कठिन है, क्योंकि शब्द ही भावना का मुख्य स्थान है, और मानसिक मूर्ति मानसिक स्वभाव का मुख्य स्थान है, इसलिए योगी लोग शब्दों के व्यवहार पर विशेष जोर देते हैं। उनका कथन है कि साहस, विश्वास, स्थिरता, दृढता, समता प्रत्येक शब्द के अर्थ की भावना मन में धारण करने की चेष्टा करो, जो भी तुम्हें अपेक्षित हो, परन्तु तोते की नई केवल शब्दमात्र उच्चारण न करो, वरन् शब्द के साथ, अर्थ का भी अनुभव करो और शब्दों को वार-वार उच्चारण करो। इससे शब्द मानसिक पुष्टि का काम करता है। जितनी वार अर्थ सहित शब्दों का उच्चारण करोगे, उतना ही शीघ्र तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।

अभ्यास करने की रीति

प्रथम अपने मनमें एक कार्य का दृढ़ निश्चय कर लो। जैसे—'इस सप्ताह में अवश्य ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा' कदाचित् पहले सप्ताह में तुम अपने निश्चय से गिर गये, तो दूसरे सप्ताह में अवश्य सफलता होगी। फिर दो सप्ताह का निश्चय करो। इसी प्रकार क्रम क्रम से अभ्यास बढता जायगा। सब अभ्यासों का यही क्रम है। प्रतिज्ञा पूर्वक समय का नियम बांधकर सब साधनों का अभ्यास करने से सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

विचार और भावना में भेद

विचार और भावना भिन्न वस्तु नहीं हैं, किंतु विचार की ही उन्नतावस्था को भावना कहते हैं। जैसे पानी की शक्ति डाइनमों के पहिये के नीचे विद्युत्प्रकाश में बदल जाती है, वैसे ही भावना भी विचार-शक्ति के द्वारा विचारों में बदल जाती है, इसलिए जो जितना भावुक होगा, वह उतने ही अधिक विचारों की सृष्टि कर सकेगा।

कवियों और लेखकों की भावुकता ही उनके कार्यों और ग्रंथों में प्रकट होती है। भिन्न भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न मनुष्यों के साक्षात्कार से मन पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ते हैं। जीवधारियों और वस्तुओं के कंपन किरण-रूप से धारा-प्रवाह के समान मनुष्य पर गिरते रहते हैं। इससे मन में अनेक प्रकार की भावनाएँ उदय होती हैं। पशु को इन भावनाओं का ज्ञान नहीं होता, किंतु मनुष्य को ही होता है। परन्तु इनके अर्थ समझ सकना हरेक का काम नहीं है। बहुधा हमारे मन में बड़े जोर की भावना उदय होती है और हमें कुछ आभास भी मिलता है,, परन्तु न तो हम उसका कुछ मतलब समझते हैं और न कारण। कभी-कभी हमारा मन अचानक उदास हो जाता है। अथवा न जाने हमारा मन अपने मित्र से मिलने की क्यों प्रेरणा करता है, परन्तु हमें बहुत सोचने पर भी इसका कारण नहीं जान पड़ता। कुछ काल बाद अब हमें खबर मिलती

है कि उस मित्र या संबधी का अनिष्ट हो गया, तब उस भावना का अर्थ समझ में आता है। यदि पूर्व ही से उसके समझने की सामर्थ्य होती, तो हम यथार्थ बात को उसी समय समझ लेते। जब भावना हो रही थी, तभी अपने मित्र या सबंधी के पास अपने विचारों को भेजकर उसके दुःख को हलका कर देते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमें बहुत गहरी भावना होती है। हम समझते हैं कि उसका अर्थ हमारी समझ में आ गया, परन्तु जब हम उसे प्रकट करना चाहते हैं, तब उसे भाषा में कह नहीं सकते। किसी समय कोई विषय हमारे मन में इतनी स्पष्टता से आता है कि उस पर हम एक पुस्तक लिख डालेंगे, परन्तु जब हम कलम उठाकर लिखने बैठते हैं, तो कलम से स्याही छिड़कते रह जाते हैं। और एक पंक्ति भी नहीं लिख पाते; अर्थात्— ऐसा तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि हम अपने भीतर उठनेवाले सूक्ष्म भाव-रूपी कंपनों को उसी प्रकार अपनी विचार-शृंखला में बाँधकर उनका अर्थ न समझ लें। जैसे हम साधारण भावनाओं को बाहरी प्रसंगों की सहायता से अपनी विचार-शक्ति के द्वारा समझ लेते हैं।

किसी भावना का मन में उदय होते ही उसको समझने का उद्योग करना चाहिए। प्रथम मन से सब भावों को निकाल कर जिस भावना को हमें समझना है, उसके सिवा अन्य भावना को मन में न उठने दो, किंतु मन को केवल उसी भावना पर लगा रहने दो। निष्क्रिय होकर तर्क का भी त्याग कर दो। और कैसे, कहाँसे, और क्यों ? इन प्रश्नों को अपने मन में न आने दो। फिर देखो कि तुम्हारी ओर से बिना किसी प्रयत्न के उस

भावना पर शृंखला पर-शृंखला बँधती जायगी और अन्त में वह विचार उदय होगा, जिससे केवल तुम्हारा ही नहीं, किंतु सारे संसार का कल्याण होगा।

एक सेब को पेड़ पर से गिरते देखकर न्यूटन के मन में जो भावना उठी थी, उस पर जब उसने विचार-शक्ति को शांति-पूर्वक काम करने दिया, तो वे विचार उसके मन में आये जिन्होंने पृथ्वी की आकर्षणशक्ति के सिद्धांत का आविष्कार कर दिया। और उससे आधुनिक विज्ञान को कितनी अमूल्य सहायता मिली, इसे कौन वैज्ञानिक नहीं जानता। मूल रहस्य की बात ध्यान में रखने की यह है कि अपनेआप कुछ न करो, केवल भावना की ध्वनि की ओर कान दो, इससे यथासमय सब बातें स्पष्ट प्रतीत होने लगेंगी।

जब मनुष्य अपनी भावनाओं का अर्थ समझने में समर्थ हो जाता है, तब उसके आगे अनन्त उन्नति का भण्डार खुल जाता है। उस समय यदि उसने अपने सामर्थ्य से लाभ उठाया और उसे अच्छे मार्ग में लगाया, तो वह अपने मन से पाशविक अंश को निकाल कर आत्मा के मधुर सूक्ष्म कम्पनों को ग्रहण करने के लिए समर्थ हो जाता है। उसको यह जगत इन्द्रिय गोचर नहीं रह जाता, किन्तु वह इन्द्रिय जीवन की सीमा को पार कर बहुत ऊँचा उठ जाता और उसकी दृष्टि सीमा रहित हो जाती है। इस प्रकार वह अमर जीवन प्राप्त कर लेता है।

बहुत लोगों को कथन है, कि मरने के बाद स्वर्ग प्राप्ति होकर मनुष्य को अमर जीवन प्राप्त होता है; परन्तु यह केवल भ्रम है। इन्द्रियों को वश करनेवाले को चाहे मृत्यु के बाद स्वर्ग

मिले या न मिले, परन्तु विचार-बल से आत्म ज्ञानी होकर इसी जीवन में वह अमरत्व अवश्य प्राप्त कर सकता है। इसमें किंचित् सन्देह नहीं, क्योंकि राजा जनक इसी प्रकार सदेह से विदेह हुए थे। बाहर से ससार में लगे रहने पर भी अन्तर से आत्मा में लीन होकर रहने का प्रश्न उन्होंने हल कर लिया था, परन्तु एक दो उलटे-पलटे साधना के करने से ही आत्म ज्ञान हो जाने की आशा कर लेना भारी भूल है; क्योंकि विचार-शक्ति की पूरी पूरी शुद्धि और परिपक्वता होने पर ही आत्म-ज्ञान होता है।

विचार-मय जीवन ही आदर्श रूप पवित्र जीवन है। साधक में सयम होना सबसे अधिक आवश्यक है, क्योंकि उसमें भावुकता और जागृत विचार-शक्ति का संयोग होता है। अपनी भावमय प्रकृति को विचारों के द्वारा वश में करना ही आत्म-सयम है। अपने कठिन भावों को उत्तम विचारों से परिवर्तन करना ही आत्म-संयम है। बिना आत्म-संयम के इन साधनों में बाह्य सफलता केवल मदारी के खेल के समान दिखावामात्र होगी। बगाल के गौरांग महाप्रभु इतने आत्मसयमी थे, कि उनका नाम ही चैतन्य पड़ गया था, परन्तु यह पद उन्होंने योंही नही प्राप्त कर लिया था, वरन् कठोर आत्मसंयम करके ही उन्होंने सिद्धि लाभ की थी। एक बार उनके संयम की परीक्षा के लिए उनकी जीभ पर चीनी रखी गई, क्योंकि मिठाई का ध्यान आते ही मुँह में लार छूट आती है। परन्तु सयम के चमत्कार से उन्होंने अपनी इन्द्रियों को भगवत् विचारों से ऐसा वश कर रखा था, कि उनकी जीभ पर की चीनी किंचित् मात्र भी गीली न हुई और जीभ पर से सूखी ज्यों-की त्यों उठा ली गई।

इसी प्रकार जीभ पर उसका किंचित् भी अंश चिपकने न पाया। इसे आत्मसंयम कहते हैं। इसी प्रकार साधन करने से सच्चा आत्म-ज्ञान होता है, केवल सोऽहं-सोऽहं कहनेवाले आत्म-ज्ञानी नहीं कहलाते।

अपने विचारों द्वारा, जैसा कि पूर्व कहा गया है, हम केवल अपनी ही भावमय प्रकृति को वश में नहीं कर सकते, किन्तु यदि चाहें तो औरों को भी वश में ला सकते हैं। जिनमें विचार शक्ति नहीं होती, अथवा वह जागृत नहीं होती, उन पर विचारों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इससे पाले हुए पशु अपने स्वामी को अप्रसन्न देखकर रोते हुए देखे गये हैं और निडर होकर शहद निकालनेवाले को शहद की मक्खी काटती नहीं। इसी भाँति योगियों के पास व्याघ्र आकर पाँव के तलवे को पालतू कुत्ते की नाईं चाटते हैं, ये सब कोई असंभव बातें नहीं हैं, क्योंकि विचारों से पशुओं पर ही नहीं, वरन् मनुष्यों पर भी प्रभाव डाला जा सकता है। यदि तुम असाधारण महात्मा पुरुषों की गणना में आने की इच्छा करते हो और संसार में अपना अमर नाम छोड़ना चाहते हो, तो आज ही से महत्ता की भावना करो और अपने मन में कल्पना करो कि हम दिनोंदिन उच्च स्थिति में प्रवेश कर रहे हैं।

लाखों मनुष्यों की इच्छा बड़े बनने की होती है, परंतु निर्बल इच्छा से कुछ सिद्ध नहीं होता। इससे प्रतिक्षण अपनी कल्पना अधिकाधिक पुष्ट करते रहो, तो निरंतर दृढ़ कल्पना से तुम्हारा इष्ट अवश्य सिद्ध होगा।

प्रत्येक संकल्प में आत्मशक्ति ओतप्रोत भरी हुई है। हमारे

मिले या न मिले, परन्तु विचार-बल से आत्म ज्ञानी होकर इसी जीवन में वह अमरत्व अवश्य प्राप्त कर सकता है। इसमें किंचित् सन्देह नहीं, क्योंकि राजा जनक इसी प्रकार सदेह से विदेह हुए थे। वाहर से ससार में लगे रहने पर भी अन्तर से आत्मा में लीन होकर रहने का प्रश्न उन्होंने हल कर लिया था; परन्तु एक दो उलटे-पलटे साधनों के करने से ही आत्म-ज्ञान हो जाने की आशा कर लेना भारी भूल है, क्योंकि विचार-शक्ति की पूरी पूरी शुद्धि और परिपक्वता होने पर ही आत्म-ज्ञान होता है।

विचार-मय जीवन ही आदर्श रूप पवित्र जीवन है। साधक में सयम होना सबसे अधिक आवश्यक है, क्योंकि उसमें भावुकता और जागृत विचार-शक्ति का संयोग होता है। अपनी भावमय प्रकृति को विचारों के द्वारा वश में करना ही आत्म-सयम है। अपने कठिन भावों को उत्तम विचारों से परिवर्तन करना ही आत्म-संयम है। विना आत्म-सयम के इन साधनों में वाह्य सफलता केवल मदारी के खेल के समान दिखावामात्र होगी। बंगाल के गौरांग महाप्रभु इतने आत्मसयमी थे, कि उनका नाम ही चैतन्य पड़ गया था, परन्तु यह पद उन्होंने योंही नहीं प्राप्त कर लिया था, वरन् कठोर आत्मसंयम करके ही उन्होंने सिद्धि लाभ की थी। एक वार उनके सयम की परीक्षा के लिए उनकी जीभ पर चीनी रखी गई, क्योंकि मिठाई का ध्यान आते ही मुँह में लार छूट आती है। परन्तु सयम के चमत्कार से उन्होंने अपनी इन्द्रियों को भगवत् विचारों से ऐसा वश कर रखा था, कि उनकी जीभ पर की चीनी किंचित् मात्र भी गीली न हुई और जीभ पर से सूखी ज्यों-की त्यों उठा ली गई।

मनसूबे में ही रह जाते हैं, इससे यदि तुमको महान् बनना है, तो अपने मन के विचारों को महत्ता की ओर लगा दो। मन की सकुचित दशा से महत्ता का सामर्थ्य और याग्यता प्राप्त नहीं होती। इससे मनको विशाल बनाओ। सवत्र विशालता को और महत्ता को ही देखो। विशालता की उच्च-से-उच्च कल्पना करो। उच्च स्थिति में रहने का ही दृढ़ सकल्प करो। महत्ता ही तुम्हारा आदर्श है। अपनी कल्पना से विशाल और स्पष्ट मानसिक चित्र बनाओ और दृढ निश्चय करो। तुम जैसी भी पतितावस्था में क्यों न हो, सकल्प बल से अवश्य महत्ता सपादन कर सकोगे। अन्तर में प्रवेश करने पर तुम्हारी सब गुप्त शक्तियाँ जागृत हो,कर तुम्हें विजय प्रदान करेंगी।

महत्ता-प्राप्ति का साधन

(१) अपनी आत्मा की विशालता का चिंतन करो और सबके साथ का बाह्य व्यवहार रहन-सहन, ढग, बर्ताव भी महान् पुरुषों का सा ही सपादन करो।

(२) जैसे तुमने अपने मन में महत्ता के विचार किये हैं, वैसे ही बाहर भी अपनी महत्ता के विचारों को कार्य में प्रकट करो।

(३) यदि तुम में कायरता हो, सकोच हो, तो उसे ललकार कर बाहर निकाल दो, नहीं तो लोग तुम्हारा विश्वास नहीं करेंगे। बड़ी-बड़ी बातें मत बनाओ, क्योंकि तुमने अपनी महत्ता का सिक्का किसी पर जमाया नहीं है।

(४) छोटी छोटी बातों को भी मन लगाकर करो, यही

महान् बनने का कारण हमारी आत्मा में ही विद्यमान है, बाहर कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं।

जब तुम नवीन विचार करते हो, तब तुम्हारा मन भी नवीन दशा में काम करने लगता है। ऐसे ही वह तुम्हारी मानसिक शक्ति और योग्यता को भी बढ़ाता है।

मनुष्य की महत्ता का लक्षण आत्म-विश्वास है। जिसमें आत्म-विश्वास नहीं, वह निर्बल है, डरपोक है, कायर है। वह किसी कार्य में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। इससे उसकी महत्ता को भी कोई स्वीकार नहीं करता। इसी से उसका मान भी नहीं होता और जन-समुदाय में उसे कोई भी नहीं पूछता। जिस बात को तुम स्वयं अपने विषय में सोचते हो, उसी का विशाल रूप अपने मन में स्थापित करो, विरोधी विचारों की ओर मन को मत जाने दो। दूसरों की सम्मति और उनके मत पर विशेष ध्यान न दो। तुम्हारे विषय में तुमसे बढ़ कर कोई संमति नहीं दे सकता, परन्तु इस बात पर किंचित् भी ध्यान न दो कि लोग तुम्हें मूर्ख कहेंगे। सदा अपने अभ्युदय की सर्वोत्तम कल्पना करते रहो, सदा कल्पना-शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न करो। कल्पना में अपूर्व सामर्थ्य है। महान् वस्तुओं के चित्र मन में रखने से कल्पना अधिकाधिक दृढ़ होकर विशाल और बलवान् होती है। नेपोलियन बोनापार्ट सदा फौज का जनरल होने की इच्छा करता था, अतः कल्पना के प्रभाव से वह केवल फौज का ही जनरल नहीं बना, किंतु फ्रांस देश का राष्ट्रपति भी बन गया था। ऐसे ही तुम भी जैसा चाहोगे वैसे बन जाओगे, परन्तु यदि केवल विचार-मात्र करोगे, तो उसी स्थिति में रह जाओगे। बहुत लोग केवल

विचार न करो कि ससार में कौन हम से सहमत है और कौन असहमत है।

(१२) यावत् अवरात्मा का आदेश छोटी छोटी बातों में न सुनोगे, तावत् बड़े बड़े कार्यों में तुम्हें परमात्मा की आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त नहीं होगी।

(१३) सशय को दूर करो। अपनी पूर्व की भूलों को भूल जाओ। भूतकाल व्यतीत हो गया, वर्तमान पर तुम्हारा अधिकार है, इससे भविष्य जैसा चाहो वैसा बना सकोगे,

(१४) जैसे तुमसे बने वैसे महत्ता की सर्वोत्तम कल्पना करो। महत्ता की कल्पना से विचारों को आचार-व्यवहार और जीवन में प्रदर्शित करो, यही महान् जीवन बनाने का साधन है।

उत्तम विचारों को मन में लाने से उत्तम कार्य होते हैं। और उत्तम कार्य करने से उत्तम जीवन होता है, तथा उत्तम जीवन से आनन्द की प्राप्ति होती है।

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'

जिसकी जैसी भावना होती है, वैसाही उसको फल प्राप्त होता है। मनुष्य को जितने सुख दुःख प्राप्त होते हैं, वे सब उसकी भावना के ही फल हैं। उसको मालूम हो या न हो, किंतु जैसी भावना की जाती है, वैसाही आगे आता है। सूक्ष्म विचार से ज्ञात होगा कि जो दरिद्री है, उसके विचार दारिद्र्य ग्रसित होते हैं। लक्ष्मी की अकृपा से वे अपने को दरिद्री जानने लगते हैं, और उनके मन में दरिद्रता के विचार हो जाते हैं और वे विचार उनको यहाँ तक घेर लेते हैं कि अन्य विचारों को भीतर आने ही नहीं देते। इस प्रकार दरिद्रता के विचारों से वे सदा ग्रस्त रहते

विशाल बनने का बड़ा साधन है। अपनी विशालता का छोटे-छोटे कामों में भी पूरा परिचय दो।

(५) अपने कुटुम्बी, मित्र, पड़ोसी तथा मिलनेवालों पर छाप जमाओ कि वास्तव में तुम क्या हो।

(६) शेखी मत मारो। अभिमान मत करो। लोगों से अपने बड़प्पन की बड़ाई बिना पूछे व्यर्थ मत करो, नहीं तो कोई भी तुम पर विश्वास न करेगा, किंतु तुम अपना कार्य करके दिखाओगे, तो स्वयं लोगों की दृष्टि में तुम्हारी महत्ता प्रकट हो जायगी।

(७) सदा स्त्री-बालक और कुटुंबियों अथवा सम्बंधियों से ऐसी उदारता, दयालुता, कोमलता और नम्रता का व्यवहार करो कि उन्हें यह जँच जाय कि तुम महान् आत्मा हो।

(८) तुम्हारे सम्बन्ध में जो आवें, उनको उच्च दृष्टि से देखो और उनका महान जानकर उचित आदर करो, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में उच्च आत्मतत्त्व है, उसमें श्रद्धा रखो।

(९) दूसरों के दोष मत देखो, किन्तु गुण देखो।

(१०) सब से महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि अपने यथार्थ स्वरूप में पूर्ण और दृढ़ श्रद्धा रखो और मन की उच्च कल्पना के अनुसार ही बर्ताव करो।

(११) चंचल-वृत्ति और अधीरता को दूर करो, सब बातों का गंभीरता से विचार करो। यावत् अपने हृदय में अन्तर्ध्वनि न सुनाई दे, तावत् किसी काम में हाथ न डालो। जब तुम्हें यह ज्ञात हो जाय कि सत्य मार्ग मिल गया, तब अपने आंतरिक विश्वास को मार्ग प्रदर्शक जानकर कार्य करो; परन्तु इसका

विचार न करो कि संसार में कौन हम से सहमत है और कौन असहमत है।

(१२) यावत् अन्तरात्मा का आदेश छोटी छोटी बातों में न सुनोगे, तावत् बड़े-बड़े कार्यों में तुम्हें परमात्मा की आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त नहीं होगी।

(१३) संशय को दूर करो। अपनी पूर्व की भूलों को भूल जाओ। भूतकाल व्यतीत हो गया, वर्तमान पर तुम्हारा अधिकार है, इससे भविष्य जैसा चाहो वैसा बना सकोगे,

(१४) जैसे तुमसे बने वैसे महत्ता की सर्वोत्तम कल्पना करो। महत्ता की कल्पना से विचारों को आचार-व्यवहार और जीवन में प्रदर्शित करो, यही महान् जीवन बनाने का साधन है।

उत्तम विचारों को मन में लाने से उत्तम कार्य होते हैं। और उत्तम कार्य करने से उत्तम जीवन होता है, तथा उत्तम जीवन से आनन्द की प्राप्ति होती है।

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी',

जिसकी जैसी भावना होती है, वैसाही उसको फल प्राप्त होता है। मनुष्य को जितने सुख दुःख प्राप्त होते हैं, वे सब उसकी भावना के ही फल हैं। उसको मालूम हो या न हो; किंतु जैसी भावना की जाती है, वैसाही आगे आता है। सूक्ष्म विचार से ज्ञात होगा कि जो दरिद्री है, उसके विचार दारिद्र्य प्रसित होते हैं। लक्ष्मी की अकृपा से वे अपने को दरिद्री जानने लगते हैं, और उनके मन में दरिद्रता के विचार हो जाते हैं और वे विचार उनको यहाँ तक घेर लेते हैं कि अन्य विचारों को भीतर आने ही नहीं देते। इस प्रकार दरिद्रता के विचारों से वे सदा मस्त रहते

हैं। उनका जीवन सदा दुखदाई बन जाता है। अपनी कमी के लिए ज्यों-ज्यों वे भयभीत होते हैं, त्यों-त्यों वे कमी का अधिकाधिक अनुभव करते हैं।

धन ऐश्वर्यादि मनुष्य को सुखी नहीं कर सकते। ऐसा देखा गया है कि एक ही श्रीमान् के घर में सब एक-से सुखी नहीं होते, किन्तु कोई अति सुखी और कोई अति दुखी होता है। वैसेही अति निर्धन भी धनवान से कई गुना सुखी होता है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि धनादि पदार्थ मनुष्य को सुखी नहीं कर सकते, किन्तु वे भ्रांति से सुख के साधन अवश्य प्रतीत होते हैं। इस प्रकार इस कमी की भावना से मनुष्य को सच्चा सुख कदापि प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए हजार प्रयत्न करके भी ऐसे विचारों को अवश्य दूर करना चाहिए। इस कमी का भाव पदार्थों की प्राप्ति से निवृत्त नहीं हो सकता, किन्तु उस कमी की भावना और बढ़ जाती है। जैसे, जिसके पास सूखा सड़ा अनाज है, वह समझता है कि जिनके पास खाने-पीने का आराम है, वे बड़े सुखी हैं, और जिनके धन की न्यूनता है, वे समझते हैं कि धनाढ्य मनुष्य बड़े सुखी हैं, परन्तु देखा जाता है कि जब भूखे को खाने को मिल जाता है, तब उसे वस्त्र की इच्छा होती है, जब वस्त्र मिल मिल जाता है, तब उसे अनेक ऐश्वर्य की इच्छा होती है, और धनादि के लिए उसका चित्त विकल होता है। तात्पर्य यह कि मनुष्य को एक के बाद दूसरी वस्तु प्राप्त हो, तो भी उसे किसी समय इतनी शांति लाभ नहीं होता कि अब हमें कुछ नहीं चाहिए। यदि यही बात हो कि इच्छा की पूर्ति से चाहना अधिक बढ़ती है, तो मनुष्य को सुख शांति कैसे प्राप्त हो सकेगी? हमारे लिए

यदि अपूर्णता है, तो वह इसी से कि हमारे विचार ठीक नहीं हैं। यावत् हम इन विचारों को न बदलेंगे, तावत् अपूर्ण ही रहेंगे। विचारों का बदलना साधारण बात नहीं है, किन्तु असाध्य भी नहीं है।

यावत् किसी बात का विचार मन में आवे, तावत् उसकी पूर्ति के लिए ईश्वर की अपार समृद्धि का भाव मन में दृढ़ रखो। किसी न्यूनता की पूर्ति के लिए दूसरे की ओर नहीं देखना चाहिए। मन का ऐसा स्वभाव डाल लेने से दरिद्री धन प्राप्त करेगा और धनी शांति लाभ करेगा। अपने भाव से ही अपने को फल होता है, इतना ही नहीं, किन्तु अपने भाव से दूसरों को भी फल होता है। इसीसे कहा जाता है कि दूसरों का मन न दुखाओ, अर्थात्—दूसरों का चित्त दुखाने से चित्त दुखाने वाली भावना का फल चित्त दुखानेवाले को होगा।

अपना भाव इंद्रिय और मन की वृत्ति द्वारा दूसरों के पास भेजने पर दूसरों को भी फल देता है। भाव की वृत्ति द्वारा भेजने वाले में भाव की तीव्रता होनी चाहिए, और जहाँ भेजा जाय उस का चित्त भेजनेवाले की वृत्ति से निर्मल हो अथवा प्रेम-वृत्ति से ग्रहण करनेवाला होना चाहिए। इस रीति से एक का भाव दूसरे पर असर करता है। ऐसे भाव भेजकर हम दूसरों का हित अथवा अहित कर सकते हैं। जब भाव भेजनेवाले में पूर्ण तीव्रता न हो, तब भेजा हुआ भाव दूसरे पर असर नहीं करता, किन्तु निष्फल हो जाता है। इससे सदा भावना तीव्र वेग-युक्त होनी चाहिए और उच्च रूप में करना चाहिए। चाहे उसका फल तत्काल हो या देर में, अथवा जन्मान्तर में हो, किन्तु होगा अवश्य।

भावना की तीव्रता, शुद्धि और विरुद्ध भावना के प्रतिबंध के अभाव के तारतम्य से फल होता है। इसी प्रकार योगी जन अनेक सिद्धियों का उपयोग करते हैं।

जीवन में अनेक भावनाएँ और अनेक विचार उठा करते हैं, ये भावनाएँ भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रथमत: मन में उठती हैं, फिर उनका प्रभाव बुद्धि और शरीर पर पड़ता है, तत्पश्चात् वे कार्यरूप में परिणत होती हैं। इसी प्रकार जो कार्य हम करते हैं, वह पहले हमारे मन में सूक्ष्म विचारों के रूप में उत्पन्न होता है, इसी से कहा जाता है कि हमारा बाह्य जीवन हमारे आंतरिक विचारों का परिणाम है।

प्रभु हमारी इच्छाओं को देखते हैं, इससे शुभ इच्छा से किया हुआ छोटा कार्य भी शुभ एवं महान् फल देता है और बुरी इच्छा से किया हुआ बड़ा काम भी बुरा फल देता है। विचार का प्रभाव समझने के लिए अच्छे बुरे, हल्के भारी, छोटे-बड़े कामों की ओर नहीं देखना चाहिए, वरन् जिस उद्देश से हमने वह काम किया है, उसी को देखना उचित है। कितनी ही बार ऐसा होता है कि काम बड़ाभारी होता है, परन्तु उसका परिणाम छोटा होता है, और कभी काम छोटा होता है और परिणाम उसका बड़ा होता है। यह नियम नहीं है कि छोटे का छोटा और बड़े का बड़ा परिणाम हो, किन्तु केवल निष्ठा का ही कारण है। जैसे, किसी अभिमान युक्त मंदिर बनवानेवाले से अधिक फल श्रद्धा-भक्ति युक्त उसी मन्दिर में झाड़ू लगानेवाले को मिलता है, अथवा छल प्रपंच से द्रव्य संपादन करके सदाव्रत चलानेवाले साहूकार को जो फल प्राप्त होता है, उससे अधिक जो उसी सदाव्रत की खिचड़ी खाकर

श्रद्धा-पूर्वक परमात्मा का उपकार मानते हुए भजन करते हैं और उसका बदला देने को अच्छे कामों में लगे रहते हैं, उनको प्राप्त होता है। ऐसे ही सब कर्मों में जान लेना चाहिए। ईश्वर के दरबार में कर्मोंकी गणना नहीं होती, किन्तु किस इच्छा से हमने यह काम किया है, यह देखा जाता है। यदि ईश्वर की ऐसी नीति हो कि जो बड़ा काम करे, उसी को बड़ा फल एव मोक्ष मिले, और गरीब को नहीं, तो गरीबों का उद्धार कैसे हो? ससार में सब मनुष्यों को तालाब, धर्मशाला, औषधालय, मन्दिर, सदाव्रत आदि बनाने का सामर्थ्य नहीं है। यदि ऐसे काम करने वालों को ही बड़ा फल मिले, तो और जीव कैसे तरेंगे? परन्तु प्रभु की कृपा सब पर सम है, इससे भली इच्छा से किये हुए छोटे कामों से भी बड़ा फल मिलता है, इसलिए हमें छोटे बड़े काम पर लक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि छोटा बड़ा काम करना तो सयोग पर है। जिसके पास जैसा साहित्य है तथा जिसके मन में जितना बल है, जैसी निष्ठा है, वैसाही उसे फल प्राप्त होगा। इससे यदि तुम से बडे काम नहीं तो कोई चिंता नहीं, परन्तु शुभेच्छा से छोटे काम का भी बड़ा ही फल होता है। किसी को शुभ इच्छा से एक लोटा पानी पिलाने से तालाब बनवाने का फल होगा, लाचार-दु:खी मनुष्य को दिलासा देने से शास्त्र अध्ययन का फल मिलता है। किसी मरते हुए मनुष्य की सेवा करने से औषधालय खोलने का फल होता है और किसी गरीब लावारिस लड़के का पोषण करने या अनाथालय में भेज देने से एक मनुष्य को जीविका-दान का फल होता है। इसी

श्रद्धा और प्रेम-पूर्वक किया हुआ

लाखों रुपये लगाकर बुरे विचार से, अर्थात—प्रशंसा और अभिमानादिकों की इच्छा से किये हुए काम का फल अच्छा नहीं होता, इससे शुभ इच्छा ही से उत्तम फल की प्राप्ति होती है, इस बात को अच्छी तरह जान लेना चाहिए।

स्वत॰ अपने कल्याण की भावना करने की अपेक्षा सर्व विश्व के कल्याण की भावना करने से तुम्हारा कई गुना अधिक कल्याण होगा, वैसे ही भिन्न भिन्न भावना करने की अपेक्षा यदि अपनी आत्मा के यथार्थ स्वरूप की भावना करोगे, तो तुम्हारी सब प्रकार की शुभ इच्छाएँ पूर्ण होकर तुम सदा के लिए पूर्ण काम हो जाओगे।

ईश्वर का भजन जैसे भाव से किया जाता है, वैसाही फल होता है। यह प्रकृति का अटल नियम है। प्रत्येक वस्तु अपनी सजातीय वस्तु को आकर्षित करती है। इसी प्रकृति के आकर्षण के नियमानुसार भजन करनेवाले का भाव ईश्वर रूप में जाकर दिव्य-रूप में भाव करनेवाले की ओर लौटता है, और उसके फल से मिलान कर देता है। ईश्वर की दिव्यता से भजन करनेवाले का भाव मिलकर बलवान् हो जाता है, और साथ में दिव्यता को ले जाता है, एवं फल देने में समर्थ होता है। इसी को ईश्वर की ओर से मिलना कहते हैं। भावनाएँ सूक्ष्म होती हैं, तो भी फल स्थूल होता है, क्योंकि वास्तविक वस्तु सूक्ष्म है और स्थूल-वस्तु सूक्ष्म का विकास मात्र है। इसी से भावना करनेवाले का भाव सूक्ष्म होने पर भी फल स्थूल रूप में मिलता है। सूक्ष्म से ही स्थूल की उत्पत्ति होती है। बिना कारण के कार्य नहीं होता।

जो ईश्वर को व्यक्ति रूप मानते हैं, उनको भी भावना के अनुसार फल होता है। फल भाव का है, भाव व्यक्ति-रूप में है, इसी से फल व्यक्ति रूप से होता है। जब कोई भजन करता है, तब उसके मन का संबध अपने इष्ट देव से होता है, वहाँ स्मृतिरूप पदार्थ अवश्य होता है, जिससे अपने इष्ट को जिस भाव से माना है, उसमें उसके मन का संयोग होता है और मन की वृत्ति उसके गुण को अपने साथ ले आती है। इसी से कितने ही अंश में इष्ट का गुण मन की वृत्ति-द्वारा मनुष्य में आ जाता है।

मन की तीव्र भावना से कामना के अनुसार संस्कार जब बलवान् होकर मन पर पड़ते हैं, तब तीव्र भावना या सामान्य भावना के अनुसार समय पाकर संस्कार परिपक्व होते और ईश्वर सृष्टि में फल रूप हो जाते हैं। इसी का नाम प्रारब्ध भोग वा फल है।

जो सांसारिक सुखों को त्याग कर अपने अंतःकरण की शुद्धि के लिए ईश्वर को भजते हैं, वे शुद्ध अन्तःकरण होकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। ज्ञान प्राप्त होने पर शरीर का छाया-रूप से व्यवहार रह जाता है, और लक्ष्य स्वरूप में रहता है, यह सब से उच्च प्रकार का भजन है। ईश्वर-पूर्ण शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप है, जो भाव उसमें किया जाता है, उस भाव का प्रतिबिम्बरूप फल देख पड़ता है। इस प्रकार अनेक व्यक्ति ईश्वर को भजते हुए अपनी-अपनी भावना के अनुसार न्यूनाधिक सांसारिक और पार-मार्थिक फल इस देह तथा आगामी देहों में पाते हैं। यही कर्म-फल का विज्ञान है और यही पूर्वोक्त भावना मनुष्य को चौरासी लक्ष योनियों में घुमाने एवं अनेक बार जन्म मरण के लिए कारण

बन जाती है और उसी शुद्ध भावना के द्वारा मनुष्य शुद्ध होकर ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिससे अपने स्वरूप का लक्ष्य होकर दुःखों की अत्यत निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

भाव ही से सब होता है

भाव नाम प्रेम का है। शास्त्रों में अंतःकरण की वृत्ति विशेष का नाम भाव है। भगवद्भक्तों का कथन है कि ईश्वर में अनुराग करने का नाम भाव है। पदार्थों में जिसका जैसा भाव है, वैसाही उसके लिए वह पदार्थ प्रतीत होता है। ये सार्वजनिक अनुभव सिद्ध बातें हैं। पदार्थों में प्रिय, अप्रिय की भिन्नता का हेतु भाव ही है।

एक ही स्त्री पुत्र की अपेक्षा से पूज्य और पति की अपेक्षा से सेविका, पिता की अपेक्षा से पुत्री, भाई की अपेक्षा से बहन, गुरु की अपेक्षा से शिष्य और शिष्य की अपेक्षा से गुरु के रूप में (वही एक स्त्री) होती है, अर्थात्—स्त्री स्वरूप से एक ही है; परन्तु अपने-अपने भावानुसार सब को भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है।

मनुष्य अपने भाव से सुखी और अपने भाव से दुःखी होता है। अपने भाव से इन्द्र को रंक और ब्रह्मा को तुच्छ मानता है। लिखा है कि—

न देवो विद्यते काष्टे न पाषाणे न मृण्मये,
भावेहि विद्यते देवस्तस्माद्भावोहि कारणम्।

काष्ट, पाषाण, मृत्तिका आदि में देव नहीं है, किन्तु भाव में देव है, इसलिए भाव ही कारण है। हम अपने भाव ही से विष्ठा

के कीट और अपने ही भाव से ब्रह्मा बनते हैं, और अपने ही भाव से तप के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सर्व दु खों से मुक्त हो सकते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि तुम स्वतन्त्र हो, चाहे जैसा भाव करो और इष्ट कार्य की सिद्धि करो।

यदि कोई हठवादी विचार में असमर्थ अपने को स्वतन्त्र न माने, तो यह भी उसका भाव है, इसमें किसी का झगड़ा नहीं। परन्तु युक्ति, प्रमाण और अनुभव से यही सिद्ध होता है कि हम विचार करने और मानसिक भाव करने में स्वतन्त्र हैं। भगवान् ने गीता में भी कहा है कि भूतों की भावना करनेवाला भूतों को और देवता-पितरों की भावना करनेवाला देवता-पितरों को प्राप्त होता है।

अनेक श्रुति-स्मृति भाव को ही श्रेष्ठ कथन कर रही हैं। यदि हमको भाव करने की स्वतन्त्रता प्राप्त न होती, तो प्रारम्भ में ही शास्त्र क्यों आज्ञा करते कि भाव को शुद्ध करो और ज्ञान-प्राप्ति के साधनों में प्रवृत्त होओ, अपने स्वरूप को जानो और शोक-सागर से पार होओ। लौकिकवादी भी यही कहते हैं कि सत्य बोलो, मिथ्या भाषण न करो, चोरी न करो, हिंसा न करो, इनसे दु ख होता है। वे परस्पर यही कहते दिखाई देते हैं कि ऐसा करो, वैसा न करो। इससे यही सिद्ध होता है कि हम स्वतन्त्र हैं, तभी हमको विरुद्ध चलने से रोका जाता है। यदि हम परतन्त्र होते, तो हमको शुभ कर्मों की प्रेरणा क्यों की जाती और ऐसा करने में हमारे ऊपर दोषारोपण क्यों और कौन करता ? यदि हम असमर्थ होते, तो हमें कोई नहीं पूछता। लोक में भी देखा जाता है कि निर्धन को कोई कुछ नहीं कहता, धनवानों से ही

बन जाती है और उसी शुद्ध भावना के द्वारा मनुष्य शुद्ध होकर ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिससे अपने स्वरूप का लक्ष्य होकर दुःखों की अत्यंत निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

भाव ही से सब होता है

भाव नाम प्रेम का है। शास्त्रों में अंतःकरण की वृत्ति विशेष का नाम भाव है। भगवद्भक्तों का कथन है कि ईश्वर में अनुराग करने का नाम भाव है। पदार्थों में जिसका जैसा भाव है, वैसाही उसके लिए वह पदार्थ प्रतीत होता है। ये सार्वजनिक अनुभव सिद्ध बातें हैं। पदार्थों में प्रिय, अप्रिय की भिन्नता का हेतु भाव ही है।

एक ही स्त्री पुत्र की अपेक्षा से पूज्य और पति की अपेक्षा से सेविका, पिता की अपेक्षा से पुत्री, भाई की अपेक्षा से बहन, गुरु की अपेक्षा से शिष्य और शिष्य की अपेक्षा से गुरु के रूप में (वही एक स्त्री) होती है, अर्थात्—स्त्री स्वरूप से एक ही है, परन्तु अपने-अपने भावानुसार सब को भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है।

मनुष्य अपने भाव से सुखी और अपने भाव से दुःखी होता है। अपने भाव से इन्द्र को रंक और ब्रह्मा को तुच्छ मानता है। लिखा है कि—

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये,
भावेहि विद्यते देवस्तस्माद्भावोहि कारणम्।

काष्ट, पाषाण, मृत्तिका आदि में देव नहीं है, किन्तु भाव में देव है, इसलिए भाव ही कारण है। हम अपने भाव ही से विष्ठा

विचारों से सर्वकार्य-सिद्धि

दृढ संकल्प ही सफलता की कुञ्जी है। विशेषत. हम लोगों को तथा नवयुवकों को यह समझ लेना चाहिए कि अपने जीवन के कर्ता-धर्ता हम ही हैं। भाग्य कोई वस्तु नहीं, दृढ विचार वाले मनुष्यों के वश में भाग्य भी होता है। यदि किसी प्रयत्न में एक बार असफलता हुई, तो दूसरी बार या तीसरी बार प्रयत्न अवश्य करना चाहिए, यावत् कार्य सिद्धि न हो।

विघ्नै पुन पुनरपि प्रतिहन्यमाना.,
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यज्यति।

बारम्बर विघ्न आने पर भी उत्तम जन प्रारम्भित कार्य का त्याग नहीं करते, किन्तु उस कार्य की पूर्ति पर्यन्त उद्योग करते हैं। अपनी वर्तमान दशा का जहाँ तक बने सदुपयोग करो और अपने आदर्श को निश्चित करके चाहे कार्य असम्भव ही क्यों न हो, तथापि दृढ विश्वास रखो कि उस आदर्श तक पहुँचने की शक्ति हम में है। यही सफलता का मूल-मन्त्र है। हाथ पर हाथ धरकर बैठ रहने से कुछ नहीं हो सकता। आदर्श की सिद्धि में जो छोटे-बड़े कार्य करने पड़ें, उसमें तुरन्त हाथ लगाना चाहिए; किन्तु यह न सोचते बैठना कि इतने थोडे से प्रयत्न से क्या सफलता हो सकती है।

'स्वल्पारम्भ क्षेमकर.'

स्वल्प आरम्भ करने से महान् कार्य की सिद्धि होती है।

पाठशाला औषधालय आदि खोलने की प्रार्थना करते हैं।

इसी प्रकार हमारे पास भाव-रूपी धन है, इसी से हमें धनवान् देखकर माता-पिता की सेवा आदि से लेकर शम दमादि, श्रवण मननादि साधनों द्वारा अधिकार प्राप्त करने की गुरु और शास्त्र प्रेरणा करते हैं। इस बात का विचार करने से निश्चय होता है कि हम स्वतन्त्र हैं। जब हम ऐसे स्वतन्त्र हैं, तब हमको अपने कल्याणकारी भाव करने को तत्पर होना चाहिए।

हमारा सच्चा जीवन आंतरिक है, इससे सच्चा परिवर्तन बाह्य स्थिति में नहीं, किंतु आंतर स्थिति में करना है। जीवन, बल, शक्ति, सुख, शांति, एवं आनन्द भीतर से ही प्राप्त करना है। जो भीतर है, वही समय पाकर बाहर आता है। जो मन में होता है, वही वाणी से प्रकट होता है। जो विचार में होता है, वही कार्य-रूप में परिणत होता है। जो मन में होता है, वही तेज-रूप से आँखों में दृष्टिगोचर होता है। जो शरीर में होता है, वही नाड़ियों में मालूम होता है। इन नियमों को हृदयगम कर लो और अपने भीतर के तत्वों को सुधारते हुए अपने आंतरिक अस्तित्व पर स्थित हो जाओ। बाहरी वस्तुओं का असर मन पर उतना ही होता है, जितना हम चाहते हैं। यदि हमें मन का द्वार बंद करना आता हो, तो बाहरी वस्तुओं का असर हम पर हो ही नहीं सकता। जैसे हमें हृदय के किवाड़ बंद करना आता है, वैसे ही हृदय के किवाड़ खोलना भी आना चाहिए।

जिस मनुष्य वा जिस वस्तु का प्रभाव मधुर हो, महत् हो, सुन्दर हो, हितकर हो, उसकी ओर हृदय के किवाड़ खोल दो, अर्थात्—नित्य बारबार उसका चिंतन करो, यही हृदय के किवाड़ खोलना है। इसी प्रकार हृदय के किवाड़ बंद करने का अर्थ है, उस वस्तु या उस विचार को मन में आने ही नहीं देना। और यदि आ जाय, तो तत्काल उसे निकाल देना। या संकेतों द्वारा उसे निवृत्त करना। जैसा कि अमुक विचार चला जाय, ऐसा मन में कहते ही वह विचार चला जायगा, अथवा अमुक तीव्र विचार भस्म हो जाय, ऐसा मन से कहते ही तत्काल वह भस्म हो जायगा। यह मेरा स्वयं अनुभूत है, करके देखो। इसलिए अपने

गच्छन् पिपीलिका याति योजनानान् शतान्यपि,
अगच्छन् वैनतेयोपि पदमेक न गच्छति ।

चींटी चलने से योजनों चली जाती है , परन्तु पक्षियों का राजा अधिक उड़ने वाला गरुड़ यदि सोचता बैठा रहे कि हम क्षण-भर में पहुँच जायँगे, तब तो बैठा रहने से एक पग भी नहीं चल सकता। सफलता प्राप्त करने के लिए यह दूसरा मन्त्र है।

प्रथम तुम्हें अपने चारों ओर सफलता का वातावरण उत्पन्न कर लेना चाहिए। अपने विचार में सफलता के विचारों को पूर्ण रीति से भर देना चाहिए , क्योंकि सफलता की प्राप्ति का कारण तुमसे कहीं भिन्न नहीं है , किन्तु तुम्हारे भीतर ही है, पूर्णतया तुम में विद्यमान है, खोजकर देखो। यह तीसरा मन्त्र है।

एक विद्वान् का कथन है कि सफलता अथवा वैभव पाना हमारा अधिकार है। इस बात पर विश्वास करो कि सफलता अवश्य होगी। जब हमारी इस मनोवृत्ति का नाश हो जायगा कि हम में जो कुछ कमी वा अयोग्यता है, जिससे हमें सफलता वा योग्यता प्राप्त नहीं होती, तभी सिद्धि होगी। मेरे कई विद्यार्थी इस दृढ़ निश्चय के प्रभाव से दरिद्रतारूपी कीचड़ से निकल गये। केवल इस बात की आशा दिलाने से नहीं , किन्तु उनके मानसिक विचारों में रात-दिन परिश्रम-पूर्वक उन विचारों को भरने से, जो स्वाभाविक ही वैभव और सफलता प्राप्त करते हैं। अतः सफलता-प्राप्ति के लिए उन्हें सदा अपने मन में भरते रहो और दरिद्रता या भय के विचारों को दूर करके उसके स्थान में सफलता एव वैभव के विचार निरन्तर दृढता-पूर्वक स्थापन करते रहो।

हमारा सच्चा जीवन आंतरिक है, इससे सच्चा परिवर्तन बाह्य स्थिति में नहीं, किंतु आंतर स्थिति में करना है। जीवन, बल, शक्ति, सुख, शांति, एवं आनन्द भीतर से ही प्राप्त करना है। जो भीतर है, वही समय पाकर बाहर आता है। जो मन में होता है, वही वाणी से प्रकट होता है। जो विचार में होता है, वही कार्य-रूप में परिणत होता है। जो मन में होता है, वही तेज-रूप से आँखों में दृष्टिगोचर होता है। जो शरीर में होता है, वही नाड़ियों में मालूम होता है। इन नियमों को हृदयगम कर लो और अपने भीतर के तत्वों को सुधारते हुए अपने आंतरिक अस्तित्व पर स्थित हो जाओ। बाहरी वस्तुओं का असर मन पर उतना ही होता है, जितना हम चाहते हैं। यदि हमें मन का द्वार बंद करना आता हो, तो बाहरी वस्तुओं का असर हम पर हो ही नहीं सकता। जैसे हमें हृदय के किवाड़ बंद करना आता है, वैसे ही हृदय के किवाड़ खोलना भी आना चाहिए।

जिस मनुष्य वा जिस वस्तु का प्रभाव मधुर हो, महत्त्व हो, सुन्दर हो, हितकर हो, उसकी ओर हृदय के किवाड़ खोल दो, अर्थात्—नित्य बारबार उसका चिंतन करो, यही हृदय के किवाड़ खोलना है। इसी प्रकार हृदय के किवाड़ बंद करने का अर्थ है, उस वस्तु या उस विचार को मन में आने ही नहीं देना। और यदि आ जाय, तो तत्काल उसे निकाल देना। या संकेतों द्वारा उसे निवृत्त करना। जैसा कि अमुक विचार चला जाय, ऐसा मन में कहते ही वह विचार चला जायगा, अथवा अमुक तीव्र विचार भस्म हो जाय, ऐसा मन से कहते ही तत्काल वह भस्म हो जायगा। यह मेरा स्वयं अनुभूत है, करके देखो। इसलिए अपने

इष्ट देव अथवा सत्पुरुषों की ओर मन का द्वार सदा खुला रखो और अपवित्र वासनाओं एव अनिष्ट वस्तुओं से मन के द्वार को वद करलो, अर्थात्—उन विचारों को मन में न आने दो, जिससे कि उनका प्रभाव तुम पर न पड़ सके। जैसे कोई मनुष्य कान से बहरा है, तो उसके लिए शब्द का अस्तित्व ही नहीं है।, वह शब्द उसके अनुभव में ही नहीं आवेगा। इसी प्रकार कोई शब्द कान पर पड़ते ही हम उस पर लक्ष्य न दें, किन्तु यह समझ लें कि हमने उस बात को सुना ही नहीं, तो इस तत्व को व्यवहार में लाने से उस वस्तु का अस्तित्व हमारे लिए नहीं रहेगा। इस दृष्टि को लक्ष्य में रखकर जिस वस्तु या अनुभव को हम मन में लाना चाहें, उसे ला सकते हैं और जिसे मन से चाहें दूर हटा सकते हैं। किसी भी उच्च कल्पना को मन में स्थापन कर हम अपने को विशाल बना सकते हैं, या अधम वासना को मन में रखकर नरक-कुण्ड का वास कर सकते हैं।

जो मनुष्य पाप या भूल की ओर से अपने हृदय-रूपी द्वार को बंद रखता है और ईश्वर तथा सत्य की ओर के द्वार को खुला रखता है, वह घोर अंधकार से निकल कर उज्ज्वल प्रकाश में आ जाता है। फिर उसके लिए पाप और भूल अदृश्य हो जाते हैं। प्रभु के साम्राज्य में प्रवेश करते ही पाप और भूल सदा के लिए विदा हो जाते हैं। वह परमात्मा की गोद में विश्राम लेने लगता है। उसमें नवीन चैतन्यता आ जाती है और वह प्रभु-मय जीवन्मुक्त हो जाता है। उसे यह स्मरण हो आता है कि हजारों रात्रि अधकार में बीती हैं और अब प्रभु के उपकार स्मरण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

यह नियम केवल आध्यात्मिक कार्यों में ही लागू नहीं है ; किंतु सांसारिक कार्यों में भी लागू होता है। यह नियम जीवन की उलझनों को सुलझाने वाला है।

यदि तुम किसी अनिष्ट विचार या वासना से मुक्त होना चाहते हो, तो यह बात पूर्ण रीति से समझ लो कि वह विचार या वासना तुममें है ही नहीं। उस पर ध्यान न दो, तो वह विचार या वासना मन से दूर हट जायगी। ऐसे ही अच्छे विचार या उच्च भावना उत्पन्न करने के लिए बार-बार उसका चिंतन करो और वह पूर्व ही से हमें प्राप्त है, ऐसी निरंतर भावना करो, तो वह वस्तु अवश्य और शीघ्र प्राप्त होगी। यह मानस-शास्त्र का अनुभूत प्रयोग है। करके देखो, अवश्य लाभ होगा।

जैसे कोई गायन या भाषण अथवा नाटक में पार्ट करने में दक्ष होना चाहता है, तो उसे ठीक रीति से अपना पार्ट पूरा करना चाहिए। निरंतर उसी विचार के चिंतन में तल्लीन रहना चाहिए और उस काम में अपने को ऐसा तन्मय करना चाहिए कि अपने आपको भी भूल जाय। यही सफलता की प्रथम सीढी है। इसी सीढ़ी पर चढने से तुम्हे निश्चय और विश्वास होगा, इससे तुम्हें गायन या भाषण में अथवा किसी भी काम में कठिनता प्रतीत न होगी, क्योंकि वह कार्य तुम्हारे लिए स्वाभाविक हो जायगा। जब तक प्रयत्न करना पड़ता है, तब तक स्वाभाविकता नहीं आती, जहाँ स्वभाविकता आई, कि मनुष्य उत्साह सपन्न हो जाता है, निसकोच होकर भाषण आदि कर सकता है और अपने विचारों की छाप दूसरों पर जमा सकता है। इससे और अन्तर में प्रवेश करो, गहरे उतरो, अपनी अतर-प्रतिभा का दर्शन

इसके जीवन में मिला देना, अपनी इच्छाओं को इसकी इच्छा में लय कर देना, तो जीवन-पर्यन्त वह वैसा ही करती है। अतः जब शास्त्र बारम्बार कहता है कि परमेश्वर तुम्हारा स्वामी है, तुम उसका नाम कभी न भूलना और अपनी इच्छा को भी उसकी इच्छा में लय कर देना, तब क्या तुम इसका पालन करते हो?

हमको अपनी सफलता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए और न यह सोचना चाहिए कि हमारी योग्यता इतनी ही है। इससे हमें जो सफलता प्राप्त होती है, वह बहुत थोड़ी होती है। हम अपने विचारों को भली प्रकार फैलने नहीं देते, किन्तु जो कुछ थोड़ा-बहुत मिलता है, उसी में सन्तोष करते हैं।

हम लोग इसीलिए बनाये गये हैं कि जीवन के पूर्ण आनन्द का अनुभव करें और जो हमारी उपयोगी वस्तुएँ हैं, उनका हमारे पास ढेर लगा रहे, किन्तु हम लोग इसलिए उत्पन्न नहीं हुए हैं कि दरिद्र तथा दु:खी रहकर जीवन-भर सड़ा करें।

इससे यदि तुम प्रयत्न करो, तो तुम भी उस अवस्था को प्राप्त कर सकोगे। व्यर्थ चिंता, भय, शोक, क्लेश के विचारों को, जो आयु और तेज को क्षीण करनेवाले हैं, त्याग दो और यह विचार करो कि आज तक हमने ऐसे विचारों से क्या लाभ उठाया? अतः अब भी ऐसे अनिष्ट विचारों को त्याग करनाही उचित है।

याद रखो, जो कुछ करना हो उसके लिए कुछ समय और कुछ यत्न की आवश्यकता होती है। इससे यदि तुम अपने जीवन को उत्तम बनाना चाहो, तो थोड़ा समय सद्विचारों में लगाने का

यत्न करो। इससे तुम्हारा जीवन शोक, मोह, भय, चिन्ता आदि से छूटकर आनन्दमय बन जायगा।

महाशय इमर्सन का कथन है कि मन में ऐसा कोई विचार नहीं उठता, जो कालांतर में महान् शक्ति-रूप न हो, तथा बड़े-से-बड़ा कार्य करने में समर्थ न हो।

कोई विचार यदि दिन, पक्ष, मास या वर्षों में दोहराया जाय, तो अन्त में वह अवश्य सफल होता है। जैसे जंग लगा हुआ शस्त्र बारबार रगड़ने से स्वच्छ होकर चमकने लगता है और महत्कार्य करने में समर्थ होता है, वैसे ही उसी विचार-धारा से भाग्य बनता और बिगड़ता है, क्योंकि विचार से इच्छा और इच्छा से कार्य एव उस कार्य को बारबार करते रहने से स्वभाव और स्वभाव से चरित्र तथा चरित्र से भाग्य बनता है। इससे विचार ही मूल कारण है। जीवन को सुधारने और बिगाड़ने-वाला विचार ही है।

उत्तम विचार की उत्पत्ति का उपाय

ए० पी० मुकरजी का कथन है, कि किसी सदाचारी पुरुष का संग करो। यदि भाग्यवश ऐसा संग न प्राप्त हो, तो उत्तम पुस्तकों का विचार करो।

प्रथम उस सदाचारी पुरुष को देखो, कि वह स्वयं सांसारिक द्वंद्वों से कैसे परे रहता है, वह किस प्रकार उनमें लिप्त नहीं होता। कैसा शान्त, धीर और स्थिर बुद्धि रहता है। आत्म-संयम उसे कैसा प्राप्त है, अन्य सब मनुष्य सुगमता से कैसे उसके आधीन हो जाते हैं। वह मान बड़ाई का भूखा नहीं होता, अपनी इन्द्रियों का

स्वामी होने से समस्त विश्व का स्वामी होता है। उसकी समीपता से दुःखियों का दुःख दूर होता है, शान्ति प्राप्त होती है। उसके वचन अमृत-तुल्य होते हैं, उसके संग से अपवित्र भी पवित्र हो जाते हैं। ससार उसे पूजता है, उसमें परोपकार की अनन्त शक्ति भरी रहती है। इस प्रकार मनुष्य अपने विचार करते करते सदाचारी हो जाता है।

दूसरी रीति उससे विपरीत है, अर्थात्—दुराचारी को जैसे सब लोग मन में बुरा कहते हैं और उसके पास कोई सज्जन खडे तक नहीं होते, तब उसकी कैसी भयानक सूरत हो जाती है, सब उससे घृणा करते हैं और उसके सम्बन्धी कुटुम्बियों की भी शोचनीय दशा हो जाती है। इससे अपने मनमें यह सब करके असत् कर्मों को त्यागने का अभ्यास करना चाहिए।

पूर्वोक्त रीति के अभ्यास से कुछ दिनों में हमें अपने आदर्श से च्युत होने की क्षणभर की भी इच्छा न होगी और अपने अन्तर में महान् शक्ति जागृत हुई प्रतीत होगी, क्योंकि अभ्यास ही एक महान् शक्ति है, इसी से प्रोफे० राममूर्ति का उत्तम स्वास्थ्य और स्वा० विवेकानद का व्याख्यान आदर्श हो गया। इससे अभ्यास के द्वारा जब मनुष्य की इच्छा-शक्ति प्रबल हो उठती है, तब वह मनुष्य दूसरों पर शासन कर सकता है। उनसे अपनी इच्छानुसार काम करा सकता है, तुम किसी दशा में हो, परन्तु शक्ति, सिद्धि तथा सफलता प्राप्त करने के लिए सत्य का मार्ग सीखो। सबसे पहले अपने विचारों को उत्तम कार्यों में लगाओ। यह सब परम शान्त अवस्था में प्राप्त होने के अभ्यास से हो सकता है। इससे प्रात काल या रात्रि को किसी एकान्त स्थान में बैठकर किसी

प्रिय वस्तु पर ध्यान लगाओ, यदि उस समय मन न लगे, तो जबरदस्ती उसी में लगाओ। जब मन शांत हो जाय, तब जिसकी तुम्हे इच्छा है, उसका विचार करो, उस समय जो विधि तुम्हारे समझ में आवे, उसीके अनुसार कार्य करो। इससे तुम्हारी चिंता दूर होकर तुम्हारा कार्य पूर्व से उत्तम चलने लगेगा, क्योंकि घबराहट की दशा में कोई बात ठीक समझ में नहीं आती। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है कि जिसका उपाय मन की शांत अवस्था में मालूम न हो। यावत् बाहरी संसारी वस्तुओं को भूल जाने का अभ्यास न हो, तावत् भीतरी सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान नहीं होता। जब उचित मार्ग का अभ्यास किया जाता है, तभी सत्य मार्ग की प्राप्ति होती है।

प्रथम एकान्त सेवन का अभ्यास करो। निर्बल विचारों को बलवान् बनाने का यही साधन है। यावत् ऐसा न करोगे, तावत् अपने विचारों को किसी मार्ग पर एकाग्र नहीं कर सकते और किसी कार्य में सफलता भी प्राप्त नहीं कर सकते। जहाँ तुमने अपने मन को वश करना सीखा कि आंतरिक शक्ति आपही प्रकट होने लगेगी। पहले जिन कामों में असफल होते थे, उन्हीं कामों में विश्वास से सफलता प्राप्त करोगे और शनैः शनैः अज्ञान से निवृत्ति होकर ज्ञान का उदय होता जायगा।

जब तुम्हारे विचार ऊपर की ओर चलने लगेंगे, तब बल, नम्रता, पवित्रता, प्रसन्नता तुम्हारे रोम रोम में प्रकट होने लगेगी और बिना प्रयत्न बड़े बड़े लोगों को तुम्हारी ओर [illegible] करने लगेगी। उनपर तुम्हारा प्रभाव पड़ने लगेगा [illegible] मन को दृढ और उपयोगी विचारों में स्थान देता है

है और जो अनिश्चित और अनुपयोगी विचारों को मन में आने देता है, वह अपना आप शत्रु है। मनुष्य का मन ही ईश्वर का निवास स्थान है, उसमें जिन बातों को प्रविष्ट करना योग्य है, उन्हीं को प्रविष्ट होने देना चाहिए। जो इस विषय को पालन कर सकता है, वह अपार संसार के वैभव को प्राप्त कर सकता है।

किसी महापुरुष का वचन है कि 'जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।' तुम्हारी इच्छाओं का पूर्ण करना तुम्हारे वश में है। कर्म-पूर्ति के लिए विचार कैसे करना, यह जानना चाहिए। कार्य-सिद्धि की शक्ति तुम में है। तुम में जो असीम विचार करने की शक्ति है, उसी से प्राणि मात्र से संधि स्थापित होती है। सिद्धि-विशेष मानसिक स्थिति का परिणाम है। मन की वैसी स्थिति इच्छा शक्ति से उत्पन्न की जाती है। इच्छा-शक्ति संपादन करना तुम्हारे अधिकार में है। विचारों की उन्नति के साथ नवीन इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, और जो इच्छाएँ तुम्हारी पूर्णता के लिए उत्पन्न होती हैं, उन्हें प्राप्त करना तुम्हारे अधिकार में है। उनमें आनेवाले विघ्न भी तुम्हारे भीतर हैं, और उनको दूर करना भी तुम्हारी आन्तरिक शक्ति के अधीन है।

एकाग्रता-पूर्वक किया हुआ विचार असंभव को भी संभव कर देता है। सच्ची आवश्यकता का ज्ञान करा देता है और आवश्यकता की पूर्ति का मार्ग भी बता देता है। साथ ही तुम्हारी पूर्णावस्था भी तुम्हें प्राप्त करा देता है। जब तुम्हारी चित्त वृत्ति एकाग्रता से विश्व-चेतना में लय होने लगती है, तब तुम्हारी शक्तियों की सीमा का बंधन टूट जाता है। सब भय और संशयों का निवारण हो जाता है, दुःख और क्लेश देनेवाले

विचारों का क्षय हो जाता है, अर्थात्—ऐसे विचारों का उठना ही बन्द हो जाता है और तुम्हारे भीतर एक अद्भुत बल प्रकट हो जाता है, जिससे सब कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

जब तुम्हें विचारों को एकाग्र करना आ जायगा, तब तुम्हारी मनोमय सृष्टि तुम्हारी इच्छानुसार होने लगेगी। स्थूल जगत् तुम्हारे अनुकूल हो जायगा और तुम इस संसार में अपने रचित 'स्वराज्य' के स्वामी बन सकोगे। सुखदायी वस्तु वा दुखदायी वस्तुओं को प्राप्त करो। दोनों तुम्हारे अधीन हैं। इसका निर्णय करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। जिसे तुम चाहो, उसे अवश्य प्राप्त कर सकते हो। यदि तुम प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हो, तो तुम्हारे सब काम विफल होना संभव हैं और यदि तुम्हारी इच्छा शुद्ध और प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है, और फिर भी तुम्हें उसमें अदृष्ट सहायता की विलक्षणता न देख पड़े, तो भी अन्त तक अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

प्रथम जीवन का उद्देश्य स्थिर करो। उद्देश्य रहित जीवन भार-रूप हो जाता है। यदि सुख प्राप्ति की इच्छा है, तो दीर्घ काल तक स्थिर सुख की खोज करो। क्षणिक सुख की प्राप्ति की भूल में न पड़ो। भय और क्रोध ये दोनों ही नाशक हैं। इनके परिवार से बचे रहो।

इच्छा शक्ति जितनी बलवान् होती है, उतने बलवान् उपायों को ढूँढ निकालती है। जहाँ इच्छा है, वहीं उपाय है।

यदि तुम कभी हताश, निराश या हतोत्साह हो जाते हो, तो जान लो कि मन की उच्च शक्तियों से अभी सहायता नहीं मिली है। उनके लिए तुम एकाग्रता को पूर्णतया संपादन करने का यत्न

है और जो अनिश्चित और अनुपयोगी विचारों को मन में आने देता है, वह अपना आप शत्रु है। मनुष्य का मन ही ईश्वर का निवास स्थान है, उसमें जिन बातों को प्रविष्ट करना योग्य है, उन्हीं को प्रविष्ट होने देना चाहिए। जो इस विषय को पालन कर सकता है, वह अपार ससार के वैभव को प्राप्त कर सकता है।

किसी महापुरुष का वचन है कि 'जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।' तुम्हारी इच्छाओं का पूर्ण करना तुम्हारे वश में है। कर्म-पूर्ति के लिए विचार कैसे करना, यह जानना चाहिए। कार्य-सिद्धि की शक्ति तुम में है। तुम में जो असीम विचार करने की शक्ति है, उसी से प्राणि मात्र से सधि स्थापित होती है। सिद्धि-विशेष मानसिक स्थिति का परिणाम है। मन की वैसी स्थिति इच्छा शक्ति से उत्पन्न की जाती है। इच्छा-शक्ति सपादन करना तुम्हारे अधिकार में है। विचारों की उन्नति के साथ नवीन इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, और जो इच्छाएँ तुम्हारी पूर्णता के लिए उत्पन्न होती हैं, उन्हें प्राप्त करना तुम्हारे अधिकार में है। उनमें आनेवाले विघ्न भी तुम्हारे भीतर हैं, और उनको दूर करना भी तुम्हारी आन्तरिक शक्ति के अधीन है।

एकाग्रता-पूर्वक किया हुआ विचार असभव को भी सभव कर देता है। सच्ची आवश्यकता का ज्ञान करा देता है और आवश्यकता की पूर्ति का मार्ग भी बता देता है। साथ ही तुम्हारी पूर्णावस्था भी तुम्हें प्राप्त करा देता है। जब तुम्हारी चित्त वृत्ति एकाग्रता से विश्व-चेतना में लय होने लगती है, तब तुम्हारी शक्तियों की सीमा का बधन टूट जाता है। सब भय और सशयों का निवारण हो जाता है, दुःख और क्लेश देनेवाले

विचारों का क्षय हो जाता है, अर्थात्—ऐसे विचारों का उठना ही बन्द हो जाता है और तुम्हारे भीतर एक अद्भुत बल प्रकट हो जाता है, जिससे सब कामों में सफलता प्राप्त होती है।

जब तुम्हें विचारों को एकाग्र करना आ जायगा, तब तुम्हारी मनोमय सृष्टि तुम्हारी इच्छानुसार होने लगेगी। स्थूल जगत् तुम्हारे अनुकूल हो जायगा और तुम इस संसार में अपने रचित 'स्वराज्य' के स्वामी बन सकोगे। सुखदायी वस्तु या दुःखदायी वस्तुओं को प्राप्त करो। दोनों तुम्हारे अधीन हैं। इसका निर्णय करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। जिसे तुम चाहो, उसे अवश्य प्राप्त कर सकते हो। यदि तुम प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हो, तो तुम्हारे सब काम विफल होना सभव हैं और यदि तुम्हारी इच्छा शुद्ध और प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है, और फिर भी तुम्हें उसमें अदृष्ट सहायता की विलक्षणता न देख पड़े, तो भी अन्त तक अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

प्रथम जीवन का उद्देश्य स्थिर करो। उद्देश्य रहित जीवन भार-रूप हो जाता है। यदि सुख प्राप्ति की इच्छा है, तो दीर्घ काल तक स्थिर सुख की खोज करो। क्षणिक सुख की प्राप्ति की भूल में न पड़ो। भय और क्रोध ये दोनों ही नाशक हैं। इनके परिवार से बचे रहो।

इच्छा शक्ति जितनी बलवान् होती है, उतने बलवान् उपायों को ढूँढ़ निकालती है। जहाँ इच्छा है, वहाँ उपाय है।

यदि तुम कभी हताश, निराश या हतोत्साह हो जाते हो, तो जान लो कि मन की उच्च शक्तियों से अभी सहायता नहीं मिली है। उनके लिए तुम एकाग्रता को पूर्णतया सपादन करने का यत्न

करो, एकाग्रता ही सब दुःखों के दूर करने का अमोघ उपाय है।

एकाग्रता करने का सहज उपाय यह है कि उठते-बैठते, खाने-पीते जिस वस्तु पर तुम्हारी दृष्टि पड़े, या जो तुम्हारे सामने आये, उसी पर मन को जमा दो, उसी पर एकाग्र हो जाओ। इस अभ्यास से तुम्हारी वृत्तियों को एकाग्रता का स्वभाव पड़ जायगा। फिर तुम इच्छानुसार किसी भी विषय पर अपनी वृत्तियों को एकाग्र कर सकोगे। जो एकाग्रता कर सकता है, वही बलवान् है, वही कर्मयोगी है। वह कभी समय की खींचा-तानी में नहीं पड़ता। उसे अपनी पूर्व की भूलों को स्मरण करने का समय नहीं मिलता। वह सदा एकाग्रता और आनन्द में निमग्न रहता है।

यदि हम अपने निराशा और असफलता के स्थान में जन्म सफल करनेवाले विचार किया करें, और सोचें कि हमारा जन्म सफल हो जाय, तो शीघ्र ही हम कल्याण-मार्ग प्राप्त कर लेंगे।

ध्यान-द्वारा जितना विचारों का सयम अधिक दृढ किया जा सकता है, उतना ही प्राण शक्ति का निरोध अधिक दृढ होता है। उससे स्फुरण-शक्ति उत्पन्न होती है और उस स्फुरण-शक्ति का जैसे-जैसे केन्द्री-भवन होता जाता है, वैसे वैसे वह शक्ति तीव्र होकर इच्छा शक्ति के अनुसार मन को आकर्पित करते हुए कार्य-सपादन करती है, क्योंकि प्राण शक्ति अद्भुत आकर्पण-शक्ति है।

सफलता-प्राप्ति के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है, एक पूर्ण विश्वास और दूसरा नियम-पूर्वक अभ्यास। इन दोनों के अवलंबन से तुम्हें अवश्य सफलता प्राप्त होगी और उससे

भय, शोक, चिंतादि से वड़फड़ाते हुए प्राणियों के कष्टों को हल्का कर सकोगे।

तुम्हें यदि दस बार असफलता हो, तो कदापि निराश न होओ। यदि सौ बार असफलता हो अथवा हजार बार असफलता हो, तो भी अपने निश्चित मार्ग से कभी विचलित न होओ। एक बार भी यदि सन्मार्ग पर लग जाओगे, और उस पर जमे रहोगे, तो अवश्य सफलता होगी।

सत्य की प्राप्ति के लिए नियम-बद्ध होने की आवश्यकता है। उद्योग और अभ्यास से धैर्य बढ़ता है और धैर्य नियम को सुन्दर बना देता है।

सफलता के सम्बन्ध में एक महान् भूल यह है कि हम दूसरों के दु:खद विचारों से आकृष्ट हो जाते हैं, पर हमें दूसरों के मुख से अपनी असफलता की बात सुनकर चिंतित नहीं होना चाहिए। न ऐसी बुरी बातों पर किंचित् ध्यान ही देना चाहिए। यदि वास्तव में बुराई हो, तो भी उसे दूर कर सफलता की ओर बड़े उत्साह-पूर्वक बढ़ना चाहिए।

किसी काम में उतावलापन मत दिखाओ। सब काम धैर्य से करो। कभी-कभी जिस वस्तु के लिए तुम लालायित होते हो, वह समय के पूर्व ही मिल जाती है। कभी अधिक समय लगता है, इससे चिन्तित मत होओ। तुमने जो माँगा है और प्राप्त करने के लिये दीर्घकाल से चिन्तन किया है, वह अवश्य प्राप्त होगा। बहुत से मनुष्य उन्नति के मार्ग पर अग्रसर नहीं होते, इसका बड़ा कारण यह है कि अन्य जन उनके सम्बन्ध में क्या कहते हैं, इस बात पर वे विशेष लक्ष्य देते हैं, इससे तुम अपनी स्थिति को जितनी

अच्छी तरह समझ सकते हो, उतनी दूसरे कदापि नहीं जान सकते, अतः दूसरे तुम्हें क्या कहते हैं, क्या सम्मति देते हैं, इस पर किंचित् मात्र भी लक्ष्य न दो, किन्तु तुम्हारी आत्मा तुम्हारे विषय में क्या कहती है, इसी पर विशेष लक्ष्य हो।

सारा जगत तुम्हारी प्रशसा करे, परन्तु तुम्हारी आत्मा तुमसे असन्तुष्ट हो, तो सब प्रशसा शरद-ऋतु के बादलों के समान हैं। तुम्हारे भीतर प्रभु की क्या आज्ञा है, तुम्हारी अंतरात्मा तुम्हारे विषय में क्या प्रेरणा करती है, वही तुम्हारे लिए हितकर है।

हृदय गवाही न दे, वह काम कभी न करो। सब लोग स्तुति करें या निन्दा, उनकी निन्दा-स्तुति पर अपना निश्चित लक्ष्य कदापि परित्याग मत करो।

जीवन पथ में हमें अग्रसर होना है; अर्थात्—आगे बढना है। जैसे मोटर हाँकनेवाला मोटर को पीछे हटा कर आगे चलाता है, इसी प्रकार हमको अपनी पूर्व की भूलों को, दोषों को, निर्बलताओं को पीछे छोड़कर हमें आगे बढना है। प्रभु हमको आगे बढने की प्रेरणा करते हैं।

जिन भूलों को पीछे छोड़ आये हैं, उन पर ध्यान देने से उस ओर मन का खिंचाव होता है। बीती हुई बात को बिसार दो, भूल जाओ। भूतकाल को भूल जाने में ही कल्याण है। गड़े मुर्दे उखाडने से कुछ लाभ नहीं। इससे पूर्व के दुःखों और दोषों का किंचित भी और कदापि स्मरण न करो।

जब कुछ काम करो, तब अपनी शारीरिक स्थिति पर अवश्य ध्यान रखो। दीर्घ श्वास-प्रश्वास करते रहो, नेत्र और हाथों को ढीले रखा करो और चित्त की वृत्तियों को सदा देखते रहो कि

बुरे विचार न उठने पावें और यदि उठें, तो तत्काल उनको चित्त से हटाकर चित्त को अपने लक्ष्य पर लगाओ और यावत् आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा न हो, तावत अपने मन को इधर-उधर भटकने न दो। सदा उत्तम विचारों से पूर्ण करने का अभ्यास करो। दूसरों के विषय में बुरा चिन्तन न करो, वैसे ही अपने विषय में भी कभी बुरा चिन्तन न करो। द्वेष, लोभ, चिन्ता, स्वार्थ, हठ, अधैर्य, निन्दा, निराशा, भय, उदासीनता, उद्वेग, क्रोधादि भयकर शत्रु हैं। इन पर विजय प्राप्त करने से ही अपने जीवन को आनन्दमय बना सकते हो। यह नीच विचार ही शरीर और मन को निर्बल कर देते हैं। इन्हीं से तुम्हारा पतन हो रहा है। किसी पदार्थ या मनुष्य की निन्दा करना अपने मन को विपरीत मार्ग में प्रवृत्त करना है। इसी से महापुरुषों ने बारम्बार कहा है कि मनुष्य को सदा अपना तथा दूसरों का हित-चिन्तन करना चाहिए। मन को उत्तम विचारों में जोड़ने से ही मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। प्रतिकूल अवस्था को पलटकर अनुकूल अवस्था प्राप्त करने का यही सरल और उत्तम उपाय वर्णन किया है। इसको थोड़े दिन अभ्यास करने से जीवन में विचित्र परिवर्त्तन होता है।

यदि तुम्हें सच्ची चाह है, तो जो चाहो सो हो सकते हो। इसकी माता तीव्रइच्छा है। तीव्र इच्छा, विश्वास युक्त प्रतीक्षा, और दृढ निश्चय—ये तीनों बातें ऐसी हैं कि इनसे सब कार्य की सफलता हो सकती है।

सफलता का गुप्त रहस्य यही है। इसका उपयोग करके अभ्यास करना तुम पर निर्भर है। हमने तो चाभी दे दी, परन्तु काम तुम्हीं को करना होगा।

अच्छी तरह समझ सकते हो, उतनी दूसरे कदापि नहीं जान सकते, अतः दूसरे तुम्हें क्या कहते हैं, क्या सम्मति देते हैं, इस पर किंचित् मात्र भी लक्ष्य न दो, किन्तु तुम्हारी आत्मा तुम्हारे विषय में क्या कहती है, इसी पर विशेष लक्ष्य दो।

सारा जगत् तुम्हारी प्रशंसा करे, परन्तु तुम्हारी आत्मा तुमसे असन्तुष्ट हो, तो सब प्रशसा शरद-ऋतु के बादलों के समान हैं। तुम्हारे भीतर प्रभु की क्या आज्ञा है, तुम्हारी अतरात्मा तुम्हारे विषय में क्या प्रेरणा करती है, वही तुम्हारे लिए हितकर है।

हृदय गवाही न दे, वह काम कभी न करो। सब लोग स्तुति करें या निन्दा, उनकी निन्दा-स्तुति पर अपना निश्चित लक्ष्य कदापि परित्याग मत करो।

जीवन-पथ में हमें अग्रसर होना है, अर्थात्—आगे बढ़ना है। जैसे मोटर हाँकनेवाला मोटर को पीछे हटा कर आगे चलाता है, इसी प्रकार हमको अपनी पूर्व की भूलों को, दोषों को, निर्बलताओं को पीछे छोड़कर हमें आगे बढना है। प्रभु हमको आगे बढ़ने की प्रेरणा करते हैं।

जिन भूलों को पीछे छोड़ आये हैं, उन पर ध्यान देने से उस ओर मन का खिंचाव होता है। बीती हुई बात को बिसार दो, भूल जाओ। भूतकाल को भूल जाने में ही कल्याण है। गड़े मुर्दे उखाड़ने से कुछ लाभ नहीं। इससे पूर्व के दुःखों और दोषों का किंचित् भी और कदापि स्मरण न करो।

जब कुछ काम करो, तब अपनी शारीरिक स्थिति पर अवश्य ध्यान रखो। दीर्घ श्वास-प्रश्वास करते रहो, नेत्र और हाथों को ढीले रखा करो और चित्त की वृत्तियों को सदा देखते रहो कि

बुरे विचार न उठने पावें और यदि उठें, तो तत्काल उनको चित्त से हटाकर चित्त को अपने लक्ष्य पर लगाओ और यावत् आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा न हो, तावत् अपने मन को इधर-उधर भटकने न दो। सदा उत्तम विचारों से पूर्ण करने का अभ्यास करो। दूसरों के विषय में बुरा चिन्तन न करो, वैसे ही अपने विषय में भी कभी बुरा चिन्तन न करो। द्वेष, लोभ, चिन्ता, स्वार्थ, हठ, अधैर्य, निन्दा, निराशा, भय, उदासीनता, उद्वेग, क्रोधादि भयकर शत्रु हैं। इन पर विजय प्राप्त करने से ही अपने जीवन को आनन्दमय बना सकते हो। यह नीच विचार ही शरीर और मन को निर्बल कर देते हैं। इन्हीं से तुम्हारा पतन हो रहा है। किसी पदार्थ या मनुष्य की निन्दा करना अपने मन को विपरीत मार्ग में प्रवृत्त करना है। इसी से महापुरुषों ने बारम्बार कहा है कि मनुष्य को सदा अपना तथा दूसरों का हित-चिन्तन करना चाहिए। मन को उत्तम विचारों में जोड़ने से ही मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। प्रतिकूल अवस्था को पलटकर अनुकूल अवस्था प्राप्त करने का यही सरल और उत्तम उपाय वर्णन किया है। इसको थोड़े दिन अभ्यास करने से जीवन में विचित्र परिवर्त्तन होता है।

यदि तुम्हें सच्ची चाह है, तो जो चाहो सो हो सकते हो। इसकी माता तीव्र इच्छा है। तीव्र इच्छा, विश्वास युक्त प्रतीक्षा, और दृढ़ निश्चय—ये तीनों बातें ऐसी हैं कि इनसे सब कार्य की सफलता हो सकती है।

सफलता का गुप्त रहस्य यही है। इसका उपयोग करके अभ्यास करना तुम पर निर्भर है। हमने तो चाभी दे दी, परन्तु काम तुम्हीं को करना होगा।

आध्यात्मिक-मण्डल

हमारे पास घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए कई महानुभावों के पत्र आया करते हैं, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, कि जिससे सब कोई घर बैठे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बल संपादन कर अपने-अपने क्लेशों और दुःखों से मुक्त होकर आनन्दमय जीवन बना कर दूसरों का कल्याण करें।

आध्यात्मिक-मण्डल के सदस्य बननेवालों को १. प्रार्थना-कल्पद्रुम, २ प्राण-चिकित्सा, ३. ध्यान से आत्म-चिकित्सा, ४. प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान, ५. अध्यात्म-शिक्षा पद्धति, ६. साधन-पद्धति, ७. त्राटक चार्ट, ८. सूचनापत्र, ९. कल्पवृक्ष, वर्ष भर के लिए, १०. ॐ दर्शन (चित्र)—ये सब दिये जाते हैं।

जो सज्जन सदस्य बनना चाहते हों, प्रवेश फॉर्म मँगवा सकते है। कोई भी सदाचारी पुरुष इस मण्डल का सदस्य बन सकता है।

पता—'कल्पवृक्ष' कार्यालय,
उज्जैन, सी आई।